गीतावली-गुंजन

(ऐडवांस-परीक्षा में नियत तुलसी-कृत 'गीतावली' के ४४ पदों की विस्तृत टीका—मार्मिक आलोचना-सहित)

संपादक
पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र बी. ए.
'साहित्यरत्न'

प्रकाशक
देवेंद्रचंद्र विद्याभास्कर
विद्याभास्कर बुकडिपो, बनारस सिटी।

प्रथम बार] सं० १९९० वि० [मूल्य ॥)

अंतर्दर्शन

(जीवनी)

हमारे यहाँ के कवियों और महात्माओं में बहुत दिनों से आत्म-गोपन की प्रथा-सी चली आ रही है। अपनी रचनाओं में अपने संबंध में कुछ अधिक कहना वे आत्मश्लाघा के कारण अनुचित समझते थे। यही बात गोस्वामी तुलसीदास के संबंध में भी है। इन्होंने अपने ग्रंथों में अपने जीवन-वृत्त के संबंध में बहुत थोड़ी बातें कही हैं। इधर गोस्वामीजी के जीवन-चरित्र के बारे में बहुत अधिक अनुसंधान हुआ है। हाल में बाबा वेणीमाधवकृत 'गोसाईं-चरित' और महात्मा रघुबरदास-कृत 'तुलसी-चरित्र' नामक दो ग्रंथ मिले हैं। इनके रचयिता गोस्वामीजी के शिष्य कहे जाते हैं, पर खेद है कि इन ग्रंथों में कथित घटनाओं में भी कहीं कम और कहीं बहुत अंतर है। इन चरित्रों में गोस्वामीजी का जन्म-संवत् १५५४ दिया है और मृत्युकाल १६८०। किंतु अधिकांश विद्वानों का मत है कि इनका जन्म-संवत् १५८९ था। इनके जन्म-स्थान का नाम राजापुर है, जो बाँदा जिले में है। यहाँ पर अब इनका एक स्मारक भी बन गया है।

ये सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम तुलसी था। छोटी अवस्था में ही माता-पिता से इनका संबंध छूट गया था। यह बात 'कवितावली' और 'विनय-पत्रिका' के कई छंदों में कथित प्रमाणों से भी सिद्ध होती है। माता-पिता से संबंध-विच्छेद हो जाने पर बाबा नरहरिदास ने इनका पालन-पोषण किया। उन्हीं की सेवा में रहकर इनमें राम-भक्ति का अंकुर जमा।

इनकी बाल्यावस्था का अधिकांश समय उक्त बाबाजी के साथ काशी में बीता। फिर ये राजापुर लौट गए। वहाँ इनका विवाह भी हो गया। विद्वानों का मत है कि इनके तीन विवाह हुए थे। तीसरी स्त्री का नाम बुद्धिमती था। इससे इन्हें तारक नामक एक पुत्र भी हुआ था, जो छोटी अवस्था में ही मर गया। ये अपनी स्त्री से बहुत अधिक प्रेम करते थे। एक बार उसके मैके चले जाने पर ये उससे मिलने को वहाँ जा पहुँचे थे। इसपर उसने इन्हें लज्जित करते हुए कहा था—

लाज न आवति आपको, दौरे आएहु साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ मैं नाथ॥
अस्थि-चर्ममय देह मम, तामैं जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ, होति न तौ भव-भीति॥

यह बात इनके हृदय में ऐसी लगी कि ये विरक्त होकर तुरत काशी चले आए। कुछ दिन यहाँ रहकर ये तीर्थाटन करने के लिये निकल पड़े। अयोध्या, मथुरा, कुरुक्षेत्र, चित्रकूट, प्रयाग, जगन्नाथजी आदि तीर्थों की इन्होंने कई बार यात्रा की। पर अपने जीवन का अधिकांश भाग इन्होंने काशी में ही विताया। कहा जाता है कि वृद्धावस्था में इनकी स्त्री से भेंट हुई थी, पर उसके प्रार्थना करने पर भी इन्होंने उसे अपने साथ नहीं रखा।

तीर्थाटन का परिणाम बड़ा सुंदर हुआ। इससे एक तो इनका व्यावहारिक ज्ञान बहुत बढ़ गया, दूसरे इन्होंने अनेक भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया। यही कारण है कि इनकी भाषा बड़ी साफ और सुथरी है तथा भाव बहुत चुस्त हैं। तीसरी बात यह हुई कि इन्हें अनेक महात्माओं और विद्वानों की संगति का लाभ हुआ। इनके प्रेमियों एवं सहयोगियों में महात्मा सूरदास, भक्तमाल के रचयिता

नाभादास, अब्दुर्रहीम खानखाना, महाराज मानसिंह, श्रीमधुसूदन सरस्वती और काशी के टोडर नामक क्षत्रिय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मीराबाई से भी पत्र-व्यवहार होने की बात कही जाती है। जिसके लिये 'विनय-पत्रिका' का 'जाके प्रिय न राम बैदेही' पद बहुत प्रसिद्ध है। पर ऐतिहासिक प्रमाणों से यह बात सिद्ध नहीं होती।

जिस प्रकार प्रायः महात्माओं के संबंध में हुआ करता है, उसी प्रकार इनके संबंध में भी लोक में अनेक चमत्कारपूर्ण एवं अलौकिक कथाएँ प्रचलित हैं। उनका विवेचन यहाँ अनावश्यक है। गोस्वामीजी परम राम-भक्त और स्मार्त वैष्णव थे। इन्हें न तो किसी प्रकार का अभिमान था और न लोभ ही छू गया था। ये सबसे नम्रतापूर्ण व्यवहार करते थे। ये परम सुशील और सदाचारी थे। ये पाखंडियों के विरोधी थे। राम या ईश्वर को छोड़ ये किसी की प्रशंसा करना अनुचित समझते थे। साधुओं और महात्माओं पर इनकी बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। स्वदेश और स्वधर्म का इन्हें बड़ा अभिमान था। तात्पर्य यह है कि ये पूरे महात्मा थे।

यों तो इनकी बनाई हुई बहुत-सी पुस्तकें कही जाती हैं। पर विद्वानों ने बहुत विचार करने पर इनके निम्नलिखित १२ ग्रंथों का नामोल्लेख निर्विवाद रूप से किया है—रामचरित-मानस, विनय-पत्रिका, दोहावली, कवितावली, रामाज्ञा-प्रश्न, पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, रामलला-नहछू, बरवै-रामायण, वैराग्य-संदीपनी और कृष्ण-गीतावली।

कवितावली के कई पद्यों से सिद्ध है कि इनके समय में एक बार काशी में महामारी या प्लेग का प्रकोप हुआ था। गोस्वामीजी इसी से रोग-ग्रस्त होकर स्वर्गवासी हुए। कहते हैं कि इन्होंने मरते समय यह दोहा कहा था—

राम-नाम-जस वरनिकै, भयो चहत अब मौन ।
'तुलसी' के मुख दीजिए, अब ही तुलसी सौन ॥

इनकी मृत्यु-तिथि के संबंध में यह दोहा प्रचलित है—

संवत सोरह सै असी, असी गंग के तीर ।
सावन-सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ सरीर ॥

इस दोहे के अनुसार गोस्वामीजी की मृत्यु संवत् १६८० के श्रावण मास की शुक्ला सप्तमी को हुई थी । पर इधर कई प्रमाणों से सिद्ध हुआ है कि इनकी मृत्यु-तिथि श्रावण शुक्ला तृतीया (शनिवार) थी (सावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तज्यौ सरीर—वेणीमाधवदास) । इसकी पुष्टि इस वात से होती है कि गोस्वामीजी के परम मित्र काशी-वासी टोडर के वंशज इसी तिथि को प्रतिवर्ष तुलसीदास के नाम पर सीधा दान किया करते हैं । तुलसीदास के संबंध में श्रीमधुसूदन सरस्वती ने वहुत ठीक कहा है—

आनंदकानने कश्चिज्जंगमस्तुलसीतरुः ।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ॥

(आलोचना)

तत्कालीन परिस्थिति

जिस समय महात्मा तुलसीदास का प्रादुर्भाव हुआ उस समय भारत में धार्मिक विप्लव मचा हुआ था । प्रत्येक संप्रदाय का मुखिया जनता को अपनी ओर खींचना चाहता था । निर्गुण-संप्रदायवालों का जोर कम हो रहा था और जनता के हृदय में भगवान् के सगुण-रूप की प्रतिष्ठा हो रही थी । सगुण-रूप की ओर जनता के झुकने कारण भी था । ईश्वर का निर्गुण-रूप योगियों और वैरागियों के चिंतन का विषय था, उसकी आराधना प्रकृति की एकांत-गोद में वन्य-जीवन में रहते हुए ही हो सकती थी ।

संसार के व्यावहारिक जीवन के मेल में उसका स्रोत सूखा था। इस-लिये जनता उसके प्रवाह में किसी प्रकार बह नहीं सकती थी। महात्मा रामानंद, रामानुजाचार्य आदि का जो सगुणोपासना का प्रवाह बहा, उसमें सराबोर होने के लिये जनता तुरत लपकी। महात्मा वल्लभाचार्य आदि ने भगवान् के सगुण-रूप की जो कल्पना की थी, उसमें तन्मयता थी, उन्माद था, रागात्मिका वृत्तियों के रमाने का उपयुक्त साधन था; पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, भगवान् का लोकरंजनकारी स्वरूप नहीं था। श्रीकृष्ण और राधिका का वह स्वरूप सामने लाया गया था जो समाज के लिये नहीं, वरन् व्यक्तिगत साधना के लिये उपयुक्त था। इसलिये यह आवश्यकता थी कि जनता के समक्ष कोई ऐसा रूप आवे, जो लोक-मंगलकारी हो, जिसमें अनेकरूपता हो, जो जनता के जीवन के मेल में हर समय दिखाई दे। यह कार्य उक्त महात्मा द्वारा हो रहा था। पर जनता आदेशोपदेश में तल्लीन होकर अपनी प्रगति यकायक नहीं पलट दिया करती। उसकी प्रगति में परि-वर्तन व्यावहारिक क्षेत्र से ही होता है।

तुलसीदासजी ने सबसे पहले जनता की प्रकृति का मनन किया। इसके पश्चात् उन्होंने अपना मार्ग निश्चित किया और फिर उसका अनु-सरण करते हुए जनता के भ्रांत हृदय को बहुत-कुछ शांत कर दिया। कुछ लोग बुद्धिवाद का सहारा लेकर यह भी कह सकते हैं कि तुलसी ने इसका कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। तत्कालीन परिस्थिति की हवा में उड़ते हुए सब कुछ आप-से-आप हो गया। किंतु तुलसी के ग्रंथों में डूबकर उनकी तह छू आनेवाला ऐसा कभी नहीं कहेगा, क्योंकि उन सबके अनुशीलन से साफ पता चलता है कि कवि की दृष्टि कहाँ अँटकी है। सभी जानते हैं कि उस समय सांप्रदायिक मनोमालिन्य

पराकाष्ठा को पहुँच गया था। उत्तर भारत में उसका कुपरिणाम नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि वह तुलसी की दूरदर्शिता से जहाँ का तहाँ बैठ गया है। पर उन स्थानों में जहाँ इस महात्मा की आवाज नहीं पहुँच पाई, जहाँ इनकी मंगलाशामयी राम-मूर्ति की प्रतिष्ठा नहीं हो पाई; वहाँ लोग आँख खोलकर देख सकते हैं कि क्या परिणाम हुआ! शैवों और वैष्णवों का झगड़ा दक्षिणापथ में भी वैसा ही था जैसा उत्तरापथ में। उसके फल-स्वरूप प्रसिद्ध कांची नगर कटकर 'शिवकांची' और 'विष्णुकांची' हो गया, पर उत्तर में 'शिव-काशी' और 'विष्णु-काशी' की नौबत नहीं आई। इसका कारण है—महामना तुलसीदास का 'रामचरित-मानस'। उसमें भगवान् शंकर राम के परमोपासक भक्त बतलाए गए हैं और राम भी शंकर के अवराधक प्रदर्शित किए गए हैं। सांप्रदायिक झगड़ों को इस प्रकार व्यावहारिक जीवन के भीतर घुसकर निकाल बाहर करने का रचनात्मक कार्यक्रम और किसने किया है?

तुलसीदास समाज के सामने जो आदर्श उपस्थित करना चाहते थे उसके लिये मर्यादा-पुरुषोत्तम राम से बढ़कर दूसरा आलंबन और कोई नहीं हो सकता था। श्रीकृष्ण के सगुण-रूप में भी वैसी अनेक-रूपता नहीं थी। उनका द्वारकावाला स्वरूप अवश्य व्यापक था, पर उसमें राजाओं के योग्य राजनीतिक जीवन की बहार अधिक थी। जनता के सांसारिक जीवन से मिलकर चलने योग्य अनेकरूपता उसमें भी नहीं थी। गोपों के बीच उनका जो जीवन व्यतीत हुआ था, वह जनता के योग्य बहुत कुछ था, पर वह एकांगी था और पिछले खेवे के कवियों ने उसमें केवल शृंगार की ही झलक देखी थी। राम

के रूप में यह बात नहीं थी। वे लीला-पुरुषोत्तम न होकर मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। व्यक्तिगत साधना से हटकर उसमें समष्टिगत साधना का भाव था। धर्म और जातीयता का सुंदर समन्वय, लोकनीति और मर्यादावाद की रक्षा, शील और सदाचार का आदर्श सामने रखने के लिये उन्हीं का स्वरूप सबसे सुंदर था। तुलसीदासजी ने इन सब बातों पर विचार किया था, उस स्वरूप को पहचाना था। अन्यथा वे अथ से इति तक केवल राम-चरित का ही वर्णन न करते रहते। जिस युग में शृंगार की धारा बह रही हो, समाज में मत-मतांतर संबंधी विच्छृंखलता छाई हो उस समय राम-चरित का केवल आदर्श रूप जनता के समक्ष रखना क्या कम दूरदर्शिता का काम था?

केवल लौकिक दृष्टि से ही नहीं, साहित्यिक दृष्टि से भी तुलसी को परखिए, तब पता चलेगा कि वस्तुतः उनमें आंतरिक दिव्य-दृष्टि थी अथवा नहीं! तुलसी के पहले कविता रचने की कई विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित थीं। तुलसी ने एक-एक करके सबको माँजा और सबमें रामचरित कहा। चारणों और भाटों की कवित्त एवं छप्पयवाली शैली, सूरदास आदि भक्त कवियों की पदवाली शैली, निर्गुणिए संतों की दोहेवाली शैली, रहीम आदि की बरवैवाली शैली तथा जायसी आदि प्रेमगाथावाले कवियों की दोहे-चौपाईवाली शैली—ये पाँच शैलियाँ मुख्य-रूप से उस समय तक देखी गई थीं। इनके साथ ही कवि लोग दो भाषाओं का व्यवहार करते थे। ब्रजभाषा की परंपरा तो बहुत पहले से चली आती थी, आगे चलकर अवधी भाषा को प्रेमगाथावालों ने अपनाया। इस प्रकार पाँच शैलियों और दो भाषाओं को लेकर तुलसी राम-चरित वर्णन करने लगे। पहली शैली में इन्होंने अपनी

काव्य-रचना की पद्धतियाँ

'कवितावली' रची, दूसरी पर 'गीतावली' बनाई, तीसरी पर 'दोहावली' लिखी गई, चौथी पर 'बरवै रामायण' का निर्माण किया और पाँचवीं पर 'रामचरित-मानस' का प्रणयन हुआ। 'रामचरित-मानस' एवं 'बरवै रामायण' में अवधी का व्यवहार हुआ और कवितावली, गीतावली आदि में ब्रजभाषा का उपयोग किया गया। स्मरण रखना चाहिए कि इन सबमें भी तुलसीदास ने साहित्यिक परिवर्तन किए, इनका अंधानुसरण नहीं किया। अवधी में प्रेमगाथावाले कवियों ने जो रचना की थी, उसमें साहित्यिक भाषा का निखरा हुआ साफ-सुथरा रूप नहीं था। उसमें जो कुछ मिठास थी, वह अवधी की बोलचाल की थी। तुलसीदास ने उसको ग्रहण तो किया, पर उसे माँजकर साहित्यिक बनाया। रामचरित-मानस में सर्वत्र यही प्रयत्न देखा जाता है। उसका सीधा-सादा चलता रूप वहीं मिलेगा जहाँ पात्र गँवार हैं, जैसे मंथरा और कोल-भीलों के प्रसंग में। ब्रजभाषा के कवियों में भी संस्कृत की कोमल-कांत पदावली के ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं थी। सूरदास की भाषा में तो कई मेल मिले हुए थे। ब्रजभाषा का सीधा-सादा वैसा रूप भी उनमें नहीं था, जैसा जायसी आदि में अवधी का था। ब्रजभाषा का बढ़िया शुद्ध और साहित्यिक स्वरूप तो आगे चलकर रसखान और घनानंद ने दिखलाया, जिसमें पिछले खेवे के कवियों से ज्यादा मिठास थी। तुलसीदास ने ब्रजभाषा का जो रूप सामने रखा, वह बहुत परिष्कृत और चलता है। उसमें साहित्यिकता है, भाषा का सुंदर गठन है। सूर की तरह इनकी भाषा जगह-जगह से उखड़ी हुई नहीं है?

ऊपर हम कह चुके हैं कि तुलसीदासजी के पूर्व कविता रचने की कई पद्धतियाँ प्रचलित थीं। 'गीतावली' की रचना अष्टछाप के कवियों

की शैली पर हुई है। गीत-काव्य की यह परंपरा संस्कृत के महाकवि जयदेव से जा मिलती है। उनके बाद विद्यापति ठाकुर और तत्पश्चात् ब्रजभूमि के रसिक भक्तों ने इस परंपरा पर असंख्य रचनाएँ कीं। तुलसीदासजी ने उन्हीं के अनुकरण पर गीतावली की रचना की है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि तुलसीदासजी ने गीतावली की रचना क्रम-बद्ध रूप में की थी अथवा स्फुटरूप में; पर फिर भी पुस्तक का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि इस पुस्तक की रचना क्रम-बद्ध नहीं हुई होगी। 'रामचरित-मानस' के ढंग पर इस पुस्तक में प्रबंध की सम्यक् कल्पना नहीं है। यहाँ तक कि रावण-युद्ध भी वर्णित नहीं है केवल उसका लक्ष्य करा दिया गया है। गीतावली में रामचरित के केवल सरस स्थलों पर ही पद लिखे गए हैं। इस प्रकार के सरस स्थल आनंदमय और करुणामय दोनों ही हो सकते थे, और इन्हीं दोनों प्रकार के मार्मिक स्थलों का इसमें बड़ी प्रांजल और समर्थ भाषा में वर्णन किया गया है। हमारे विचार से गीतावली की रचना स्फुट रूप में ही हुई है, राम-चरित के मर्मस्पर्शी स्थलों पर तुलसीदासजी ने जो कुछ ललित पदों में लिखा था उसका पीछे से संकलन हुआ है। संभव है इसका संकलन उन्होंने स्वयं अपने हाथों से किया हो अथवा उनके पीछे किसी दूसरे ने किया हो। हमारी इस धारणा की पुष्टि गीतावली के कुछ पद भी करते हैं, जिनमें कथा की पुनरावृत्ति हुई है। बालकांड में तो धनुष-यज्ञवाले स्थल पर बड़ा व्यतिक्रम है।

गीतावली की रचना

जान पड़ता है, इसका वर्तमान रूप में संकलन तुलसीदास के पीछे हुआ है या कम से कम उनके पीछे कुछ लोगों ने इसमें कुछ और पद रख दिए हैं। 'सूरसागर' की बाललीला के कुछ पद इसमें बहुत थोड़े परिवर्तन

के साथ मिल जाते हैं (जैसे, इस संग्रह का चौथा पद—आँगन खेलत आनँदकंद)। ऐसी ही दशा तुलसीदासजी की 'कृष्ण-गीतावली' की भी है।

इसलिये हम इसे मुक्तक-रचना ही मानते हैं। यदि साधारण वातों पर ध्यान दें तो इसमें मंगलाचरण का भी अभाव है। कांडों का जो विभाग किया गया है वह तुलसीदास के 'रामचरित-मानस' से नहीं मिलता, वाल्मीकीय रामायण से वहुत मिलता है।

इसमें सरस स्थलों के वर्णन की जो वात लिखी गई है वह पुस्तक में गृहीत कथा से भी लक्षित होती है। गीतावली की रचना रामचरित-

गीतावली के विषय

मानस के पहले की है। इसमें तुलसीदासजी ने सीता-निर्वासन आदि घटनाएँ भी रखी हैं, जिन्हें उन्होंने मानस में 'अनभिप्रेत' समझकर छोड़ दिया है। गीतावली में लड़ाई-झगड़े का वर्णन एकदम नहीं किया गया है। वालि-सुग्रीव की कथा उड़ा ही दी गई है। रावण के युद्ध का भी केवल समाचार कहलाया गया है। पर इसके विपरीत कथा के भावात्मक पक्ष पर पद भरे पड़े हैं। वालकांड में रामजन्म के उत्सव का वर्णन वड़े धूमधाम से किया गया है, नगर के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति के हृदय की स्थिति कैसी थी, उनके कार्य क्या-क्या थे ? इसका भलीभाँति वर्णन किया गया है। वालकों की क्रीड़ा, माताओं का उन्हें खेलाना आदि, उनके संस्कारों का वर्णन, वालकों के भविष्य के संबंध में माताओं की चिंता, विश्वामित्र के आगमन से उत्पन्न होनेवाले विक्षोभ, विश्वामित्र के साथ उन्हें देखकर लोगों के हृदय में आविर्भूत होनेवाले कौतूहल आदि का वड़े रमणीय और मनोहर ढंग से वर्णन है। ताड़का-वध का प्रसंग आने पर तुलसीदासजी 'ख्याल दली ताड़का देखि ऋषि देत असीस अघाई' कहकर फिर अपनी भावभूमि पर आ जाते हैं। इसी प्रकार अयोध्या-

कांड में कथा-वस्तु किधर जा रही है इसका कोई पता नहीं, पर राम-लक्ष्मण और सीता के प्रवास से अयोध्या से लेकर चित्रकूट-पर्यंत किस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न हो गई, इसका वर्णन बड़े प्रौढ़ और तल्लीन कर देनेवाले शब्दों में मिलता है। 'मानस' में तो पशु-पक्षियों के विषय इतना ही लिखा है—'रामवियोग विकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े।' पर गीतावली में पालतू 'शुक-सारिका' अपनी अवशता पर विचार भी करते हैं, और अत्यंत समीचीन शब्दों में—'हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो।' इसमें ध्यान देने की बात यह है कि वार्तालाप के लिये तुलसी ने ऐसे पक्षियों को चुना है, जिनकी बातचीत के संबंध में बुद्धिवादियों को भी शंका उठाने का अवसर नहीं है।

इसी प्रकार अरण्यकांड में विराध-वध के वर्णन की आवश्यकता नहीं समझी गई, पर सीताहरण का मार्मिक स्थल, शबरी-मंगल का दिव्य प्रसंग वहाँ भी विस्तार से है। सुंदरकांड में लंका कैसे जलाई गई इसका वर्णन नहीं है, पर सीता और हनुमान से भेंट होने के हृदय-द्रावक दृश्य का चित्रण और त्रिजटा-संवाद वहाँ भी है। रावण की मंडली में भी मानव-प्रवृत्ति का ही दिग्दर्शन कराया गया है; लोग किस प्रकार रावण को समझाते हैं, और वह फिर भी नहीं मानता आदि। इसी प्रकार लंकाकांड में युद्ध का वर्णन नहीं है, पर लक्ष्मण-शक्ति का दृश्य सामने आता है, अयोध्या में अवधि के निकट आने पर सबके हृदय में होनेवाली अभिलाषा का बराबर चित्रण है। अंत में उत्तरकांड में बड़े समारोह के साथ तिलकोत्सव का वर्णन और फिर सीता-निर्वासन की चर्चा है। कहने का तात्पर्य यह कि इस ग्रंथ के देखने से ऐसा जान पड़ता है कि तुलसी ने उग्र भावनाओं और दृश्यों

के चित्रणों को हटाकर मधुर और कोमल भावनाओं एवं दृश्यों के वर्णन में ही गीत लिखे हैं। इसीलिये हमारे विचार से गीतावली तुलसीदासजी के रामचरित-विषयक अन्य काव्यों से बहुत अधिक सरस है। ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने इस ग्रंथ की रचना में अपना हृदय काढ़कर रख दिया है।

किसी कवि की कविता की समालोचना करने के लिये तीन बातों पर विचार करना आवश्यक होता है—भाषा, भाव और वस्तु-वर्णन।

भाषा

इसलिये गीतावली की समालोचना करते समय सबसे पहले भाषा पर विचार करना है। हम ऊपर कह चुके हैं कि तुलसीदास ने अपने काव्यों में दो भाषाओं का प्रयोग किया है। एक ब्रजभाषा और दूसरी अवधी भाषा। गीतावली की भाषा को ब्रजभाषा ही कहना चहिए। उस समय साहित्य-क्षेत्र में एक सामान्य काव्य-भाषा का प्रचार था। जिसका प्रयोग सभी हिंदी कवि किया करते थे। राजपूताने में इस भाषा का नाम 'पिंगल' भाषा था। वे लोग अपनी राजपूतानी भाषा को 'डिंगल' कहते थे। इसी सामान्य काव्य-भाषा का प्रयोग सभी प्रांत के लोग करते थे। ब्रजभाषा का ठेठ स्वरूप सभी कवियों की भाषाओं में देखने दौड़ना ठीक नहीं है। सभी घनानंद और रसखान नहीं हो सकते और न सभी के होने की आवश्यकता ही है। अन्य प्रांत के अथवा ब्रज-प्रदेश से कुछ हट-कर रहनेवाले कवियों की भाषा में उनके देश की कुछ-न-कुछ छाप पाई ही जाती है। 'केशव' में हम बुँदेली का पुट पाते हैं तो देव, भूषण आदि में बैसवाड़ी की झलक। इसी प्रकार अवध प्रांत में या उसके समीप रहनेवाले कवियों की सामान्य काव्य-भाषा भी अवधी के मिश्रण से बची नहीं है। यही कारण है कि 'गीतावली' में भी हम

अवधी का मिश्रण पाते हैं। तुलसीदासजी की अवधी और ब्रज-भाषा पर गंभीर दृष्टि डालने से साफ लक्षित होता कि इन्होंने दोनों को साहित्यिक ढाँचे में ढालने का उद्योग किया है। अवधी इनके पहले साहित्यिक क्षेत्र से दूर थी। उसमें ठेठ रूप की मिठास थी, इसलिये उसमें सुधार करके उसे साहित्यिक रूप देने के लिये विशेष उद्योग की आवश्यकता थी। संस्कृत की कोमल-कांत पदावली का अनुकरण तुलसीदास ने अपनी अवधी में जगह-जगह किया है। पर तुलसीदास के पश्चात् अवधी भाषा में कोई ऐसा कवि नहीं हुआ जो इनकी जमाई हुई परिपाटी को व्यवस्थित रूप से आगे ले चलता। इसीलिये अवधी भाषा सामान्य काव्य-भाषा नहीं हो सकी। एक बार उसका उत्थान हुआ और वह थोड़ा-सा विकसित होकर ही रह गया।

ब्रजभाषा के संबंध में यह बात नहीं थी। उसे काव्योपयुक्त बनाने के लिये उद्योग नहीं करना था, वह पहले से ही मँजी मँजाई चली आ रही थी। केवल उसे कुछ स्थिरता देने की आवश्यकता थी और केवल ब्रजप्रांत के शब्दों का सहारा न लेकर सभी स्थानों में प्रचलित शब्दों का प्रयोग करने की आवश्यकता थी। और इस प्रकार भाषा को सबके योग्य बना देने से ही ब्रज-भाषा का महत्त्व बढ़ सकता था। केवल ब्रज-प्रांत के कठघरे में बंद रहने से भाषा प्रादेशिक हो जाती और उसमें काव्य का निर्माण सबके लिये दुरूह हो जाता। कवितावली और गीतावली में यही बात दिखाई देती है। तुलसीदास ने ब्रजभाषा का केवल ढाँचा भर लिया है, उसमें बहु-प्रचलित मुहावरे और शब्द अन्य देशों के भी रख दिए हैं। पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि भाषा मिश्रित करके चौपट कर दी गई है। भाषा की स्वाभाविक धारा ऐसी बढ़िया है कि तुलसीदास के इस प्रयत्न पर

ध्यान ही नहीं जाता। विच्छृंखलता तो कहीं पाई ही नहीं जाती। हिंदी-काव्य-क्षेत्र में व्यवहृत होनेवाली ही नहीं, इन्होंने अन्य देशी और विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी ग्रहण किया है। अन्य भाषाओं के शब्दों का सामान्य काव्य-भाषा में प्रयोग पहले से ही होता चला आ रहा था, पर वे शब्द इतने घुलमिल गए थे कि उनके मूल रूप का पता ही नहीं था। पर तुलसीदासजी ने उस समय के प्रचलित शब्दों को स्वयं ग्रहण किया है। पहले के किसी कवि ने उस शब्द का प्रयोग किया है या नहीं, इसपर वे विचार करने नहीं बैठे।

यों तो तुलसी की भाषा सभी ग्रंथों में परिष्कृत और प्रौढ़ है, पर उनके दो ग्रंथों में भाषा का ढाँचा बहुत ही समर्थ है। गीतावली और विनय-पत्रिका की रचना पदों में हुई है। इसलिये सानुबंध भाषा लिखने का अवसर इन ग्रंथों में अधिक था, इसका निर्वाह दोनों ग्रंथों में बहुत अच्छा है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि यद्यपि तुलसी ने ब्रज के रसिक भक्तों का अनुकरण किया था, पर इनकी भाषा उनसे अधिक पुष्ट और परिमार्जित है। ब्रज के कवियों में सूर तक की भाषा उखड़ी हुई है, अन्य पद लिखनेवालों की कथा ही क्या !

गीतावली में तुलसीदासजी ने कुछ ठेठ पर समीचीन शब्दों का प्रयोग तो किया ही है, इसके अतिरिक्त इसमें मुहावरों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। मुहावरे किसी भाषा की ऐसी विभूति हैं जिनके बिना भाषा सूनी जान पड़ती है, फीकी लगती है। दूसरी बात भाषा के संबंध में ध्यान देने की यह है कि गीतावली में तुलसी की भाषा अत्यंत प्रवाहयुक्त है। इतनी कोमल, मधुर और स्वच्छ भाषा लिखने में हिंदी के बहुत कम कवि सफल हुए हैं। इस प्रकार का अखंड अधि-

कार तो तुलसी के अतिरिक्त और किसी कवि को प्राप्त ही नहीं था।

भाव से हमारा तात्पर्य उस वस्तु से है, जिसे रीति-शास्त्र में 'रस' कहते हैं। इसी के अंतर्गत स्वतंत्र रूप में उन भावों की गणना भी हो जायगी जो रसावस्था तक नहीं पहुँचते। तुलसी का रस-वर्णन और भाव-निरूपण गीतावली में बहुत अच्छा है। यथास्थान सभी रसों और अधिकांश भावों का दिग्दर्शन इस पुस्तक में मिलेगा। कहीं-कहीं तो ऐसे भाव भी दिखाए गए हैं जो रीतिकारों के निरूपित नामों की सीमा के बाहर के हैं। वत्सल-रस का वर्णन तुलसी की दो पुस्तकों गीतावली और कवितावली में बहुत बढ़िया है। सूर और तुलसी के बाल-वर्णन पढ़कर वत्सल को भाव-कोटि में न रखनेवाले आचार्य भी विचलित हो सकते हैं। उन्हें मानना ही पड़ेगा कि वत्सल को भी 'रसत्व' प्राप्त है।

भाव

यहाँ पर नवो या दसो रसों के उदाहरण खोजकर रख देने और कुछ भावनाओं के उदाहरण उपस्थित कर देने की हम आवश्यकता नहीं समझते। रस-चक्र का थोड़ा-सा भी अभ्यास रखनेवाला इस कार्य को सरलतापूर्वक कर सकता है। यहाँ पर यह दिखलाने की आवश्यकता है कि तुलसी ने रस का वर्णन या भाव-निरूपण किस प्रकार किया है। रस या भावों की व्यंजना के लिये अनुभावों की सम्यक् योजना की आवश्यकता होती है। अमुक व्यक्ति शोक में डूब गया, वह बड़ा हर्षित हुआ आदि कह देने से किसी रस या भाव का संचार नहीं होता। किसी भाव के संचार के समय किसी के हृदय और शरीर की क्या अवस्था होती है इसका सम्यक् वर्णन आवश्यक होता है। तुलसी ने इसका बराबर ध्यान रखा है। भरत के हृदय की क्या दशा है—

(१) जननी! तू जननी? तौ कहा कहौं विधि केहि खोरि न लाई?

(२) जो पै हौं मातु-मते महँ ह्वैहौं।
तौ जननी या जग में मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं॥
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि? कौन मानिहै साँची।
महिमा मृगी कौन सुकृती की खल-वच-विसिखन बाँची॥

इसी प्रकार शरीर की दशा—

(१) कबहुँ पौढ़ि पय-पान करावति, कबहूँ राखति लाइ हिए।
बालकेलि गावति हलरावति पुलकति प्रेम-पियूष पिए॥
(२) छुन भवन छुन बाहर बिलोकति पंथ भ्रू पर पानि कै।

सभी प्रकार के भावों के निरूपण में तुलसीदासजी तदनुकूल क्रियाओं और चेष्टाओं का बराबर ध्यान रखते हैं। इसी से जान पड़ता है कि तुलसी का कवि-हृदय कितना उदार और विस्तृत था। गीतावली का प्रत्येक पद भाव के निरूपण के उदाहरण में रखा जा सकता है। रामचरित-मानस में हमें कुछ पंक्तियाँ ऐसी मिल सकती हैं जिनमें भाव या रस की सत्ता न हो, केवल इतिवृत्त मात्र वर्णित हो; पर गीतावली के किसी पद में ऐसी बात नहीं है। एक तो कवि की भावुकता इसी बात से झलकती है कि उसने केवल मर्मस्पर्शी स्थल ही चुन-चुनकर गीत लिखने के लिये अलग किए हैं; उसके पश्चात् भावों के निरूपण में समीचीन सामग्री का संकलन दूसरी विशेषता है।

वस्तु-वर्णन या वस्तु-संकलन पर विचार करने के पहले यह स्मरण कर लेना चाहिए कि गीतावली पूर्ण प्रबंध-काव्य नहीं है। फिर भी इसमें जो खंड-चित्र एक-एक पद में रखे गए हैं उनके वस्तु-संकलन और वर्णन में कवि ने अपना अच्छा कौशल दिखाया है। वस्तु-वर्णन दो प्रकार का हो सकता है, एक तो भाव की व्यंजना और दूसरे बाह्य दृश्य-चित्रण। इसका

वस्तु-संकलन

थोड़ा-सा वर्णन हम ऊपर लिख ही चुके हैं। इसलिये यहाँ पर वर्णन-शैली के विषय में ही विचार करना उपयुक्त होगा। भाषा में अलंकार, लाक्षणिक प्रयोग और व्यंग्य आदि वस्तु-वर्णन की विचित्र शैलियाँ ही हैं। मुहावरे भी इसी कार्य का संपादन करते हैं। मुहावरे एक प्रकार के लाक्षणिक प्रयोग ही हैं। मुहावरों के द्वारा कविता में खंड-चित्रों की योजना होती है, क्योंकि प्राचीन समय के खंड-चित्र घिस-घिसाकर मुहावरों के संक्षिप्त रूप में पड़े रह जाते हैं। यही नहीं, घटनाओं का स्पष्ट और स्वच्छ चित्र सामने लाने के लिए अथवा अगोचर भावनाओं को सरलता से हृदयंगम कराने के लिये कवि लोग गोचर चित्रों का निरूपण बराबर किया करते हैं। काव्य में अप्रस्तुतों का विधान इसीलिये किया जाता है। तुलसी ने जगह-जगह रूपक बाँधकर और उत्प्रेक्षाएँ करके इसी कार्य की पूर्ति की है। शौकीन कवियों की भाँति केवल अपनी कला दिखलाने के लिये अलंकारों का प्रयोग तुलसी ने बहुत कम किया है। दो-चार उदाहरण लीजिए—

(१) देखि बधिक-बस राज-मरालिनि लषनलाल छिनि लीजै।

× × × ×

गोमर-कर सुरधेनु, नाथ! ज्यौं त्यौं पर-हाथ परी हौं।

(२) खोजत घर-घर जनु दरिद्र-मनु फिरत लागि धनु धायो।

(३) बिरह विषम विष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहे री।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री।

(४) सर-सरीर सूखे प्रान बारिचर जीवन-आस तजि चलनु चहे री।
मैं प्रभु-सुजस-सुधा सीतल करि राखे तदपि न तृप्ति लहे री।

(५) रिपु-रिस घोर नदी बिबेक-बल धीर-सहित हुते जात बहे री।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समीर-सुत पैरि गहे री।

यद्यपि तुलसी की महत्ता को प्रमाणित करनेवाले इनके और भी कई ग्रंथ हैं, तथापि केवल गीतावली पर ही विचार करने से इनके विशाल कवि-हृदय का परिचय मिल जाता है। ऊपर इनकी भावुकता, काव्य-मर्मज्ञता और वर्णन-पटुता के कई उदाहरण दिए गए हैं। यदि इन्हें हम अन्य हिंदी-कवियों के समक्ष तुलनात्मक दृष्टि से सामने लाते हैं तो भी इन्हीं का पलड़ा झुका हुआ दिखाई देता है। दो भाषाओं पर पूर्ण अधिकार, मानव-व्यापारों के अधिकांश स्वरूपों का निरूपण, सामाजिक प्रवृत्ति की सच्ची पहचान और अभिव्यंजन-शक्ति का कौशल—एक साथ इतनी बातें न तो महात्मा सूरदासजी में थीं और न महाकवि केशवदास में। जायसी, कबीर आदि का तो नाम लेना ही व्यर्थ है, क्योंकि उन लोगों का क्षेत्र ही एकांगी था। इसलिये यदि हमसे पूछा जाय कि हिंदी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि, काव्य और लोक दोनों पक्षों को साथ-साथ लेकर चलनेवाला और भक्ति की सुधा-धारा बहानेवाला महात्मा कौन था? तो हम बिना किसी संकोच के 'गोस्वामी तुलसीदास' का नाम लेंगे। तुलसी के काव्य का महत्त्व उतना ही बढ़ता जा रहा है, जितना वह पुराना होता जाता है। विद्वानों और अविद्वानों दोनों का समान रूप से रंजन किसके ग्रंथ करते हैं? भारत की संस्कृति को कविता की बाँध से रोकने में कौन कवि समर्थ हुआ है? केवल तुलसीदास। संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में भी इनका स्थान बहुत ऊँचा है। संस्कृत में कालिदास और अँगरेजी में शेक्सपियर जिस कोटि में रखे जाते हैं, हिंदी में तुलसी का स्थान उससे भी ऊँचा है।

उपसंहार

पद-सूची

(बालकांड)

(अयोध्याकांड)

(अरण्यकांड)

(सुंदरकांड)

(लंकाकांड)

(उत्तरकांड)

गीतावली-गुंजन

बालकांड

(१) राम-जन्म

राग आसावरी

आजु सुदिन सुभघरी सुहाई ।
रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई ॥ १ ॥
अति पुनीत मधुमास, लगन ग्रह बार जोग समुदाई ।
हरषवंत चर अचर भूमिसुर तनरुह पुलक जनाई ॥ २ ॥
बरषहिं विबुध-निकर कुसुमावलि नभ दुंदुभी बजाई ।
कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई ॥ ३ ॥
सुनि दसरथ सुत-जन्म लिए सब गुरुजन विप्र बोलाई ।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनँद उर न समाई ॥ ४ ॥
सदन वेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु विधि बाज बधाई ।
पुरवासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज-निज संपदा लुटाई ॥ ५ ॥
मनि, तोरन, बहु केतु, पताकनि पुरी रुचिर करि छाई ।
मागध सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ॥ ६ ॥
सहज सिँगार किए बनिता चलीं मंगल बिपुल बनाई ।
गावहिं देहिं असीस मुदित चिरजिवौ तनय सुखदाई ॥ ७ ॥
बीथिन्ह कुंकुम कीच अरगजा, अगर अबीर उड़ाई ।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देह-दसा बिसराई ॥ ८ ॥

अमित धेनु गज तुरग वसन मनि जातरूप अधिकाई।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥ ९ ॥
सुखी भए सुर, संत, भूमिसुर, खल-गन-मन मलिनाई।
सबइ सुमन विकसत रवि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई ॥१०॥
जो सुख-सिंधु-सकृत-सीकर तें सिव-विरंचि-प्रभुताई।
सोइ सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि कौन जतन कहौं गाई ॥११॥
जे रघुवीर-चरन-चिंतक तिन्ह की गति प्रगट दिखाई।
अविरल अमल अनूप भगति दृढ़ 'तुलसीदास' तब पाई ॥१२॥

शब्दार्थ—मधुमास=चैत्र का महीना। भूमिसुर=ब्राह्मण। तन-रुह=रोम। विबुध-निकर=देवताओं का समूह। दुंदुभि=नगाड़ा। वेद-विहित=वेद के अनुकूल। न समाई=नहीं अँटता। वाज=बजती है। तोरन=उत्सव के लिए बने हुए फाटक। केतु=झंडा। रुचिर=सुंदर। मागध=वंश-क्रम से कीर्ति गानेवाले। सूत=पौराणिक। वंदीजन=अवसर के अनुकूल कविता-पाठ करनेवाले। सहज=स्वाभाविक। तनय=पुत्र। कुंकुम=केसर। अरगजा=केसर, चंदन, कपूर आदि मिलाकर बनाया हुआ एक सुगंधित द्रव्य। अगर=धूप। धेनु=गाय। तुरग=घोड़ा। जातरूप=सोना। बिलखाई=रोता है। सकृत=एक। सीकर=बूँद, जलकण। विरंचि=ब्रह्मा। गति=अवस्था।

भावार्थ—(किसी सखी का वचन दूसरी सखी से) आज का दिन सुंदर है और (पृथ्वीतल पर) शुभ घड़ी भी आज ही शोभायमान है। क्योंकि रूप (सौंदर्य), शील (आचार) और गुण के घर स्वयं रामचंद्रजी राजा (दशरथ) के राजमहलों में उत्पन्न हुए हैं ॥१॥ अत्यंत पवित्र चैत्र का महीना है। लग्न, ग्रह, दिन और योग सभी पवित्र हैं (कोई अनिष्टकर बात नहीं है)। चराचर (जड़-चेतन) सब प्रसन्न हैं। ब्राह्मण भी हर्षित हैं (क्योंकि भगवान् ब्रह्मण्य हैं)। सबके शरीर में रोमांच हो गया है ॥२॥ देवता-गण आकाश से नगाड़े बजाकर पुष्प-वृष्टि करते हैं। कौशल्या आदि सभी माताएँ मन में हर्षित हैं। इस (पुत्रोत्सव) के सुख का वर्णन

नहीं हो सकता ॥३॥ दशरथजी ने पुत्र का जन्म सुनकर बड़े-बूढ़ों और ब्राह्मणों को बुलवाया। फिर उन्होंने (उन लोगों के आज्ञानुसार) वेद-विहित अत्यंत पवित्र कर्म 'नांदी-मुख श्राद्धादि) किए। आनंद इतना अधिक है कि (उनके) हृदय में अँटता ही नहीं ॥ ४ ॥ घर में मुनि (वसिष्ठजी) मधुरवाणी से वेद-ध्वनि कर रहे हैं। अनेक प्रकार से बधाइयाँ बज रही हैं। (और बाहर नगर में) नगर-वासियों ने अपने प्रिय स्वामी (दशरथ) के लिये (उनके पुत्रोत्सव के उल्लास में) अपनी-अपनी संपत्ति लुटा दी है ॥ ५ ॥ मणियों, तोरणों, अनेक झंडों और झंडियों से नगर अत्यंत सुंदरता के साथ आच्छादित है। द्वार पर मागध, सूत और बंदीगण इधर-उधर कीर्ति-गान करते फिरते हैं ॥ ६ ॥ स्त्रियाँ (शीघ्रता में) केवल स्वाभाविक ही शृंगार किए अनेक प्रकार की मांगलिक सामग्री जुटाकर चल पड़ीं। वे गाती हैं और प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती हैं कि ये सुखदायक पुत्र चिरंजीवी हों ॥ ७ ॥ गलियों में केसर और अरगजा की अधिकता से कीचड़ हो गया है। अगर की सुगंधि और अबीर के कण उड़ रहे हैं। नगर के स्त्री-पुरुष प्रेम में मग्न होकर और अपने शरीर की सुध-बुध भूलकर नाचते हैं ॥ ८ ॥ महाराज दशरथ असंख्य गाय, हाथी, घोड़े और अत्यधिक वस्त्र, मणि और सोना दान कर रहे हैं। जो जिस प्रकार की वस्तु पाने योग्य है उसे वैसी ही वस्तु दी जाती है। (उस समय का दान देखकर ऐसा जान पड़ा कि) सभी (आठों) सिद्धियाँ ही राजमहल में आ गई हों ॥ ९ ॥ देवता, संत और ब्राह्मण तो सुखी हुए, पर दुष्टों के हृदय में मलिनता हो गई (दुःख हुआ)। (यह बात वैसी ही है, जैसे) सूर्य के निकलने से सब पुष्प तो विकसित होते हैं, पर कुईं का वन विलखने लगता है (मुरझा जाता है) ॥ १० ॥ जिस सुख के समुद्र की केवल एक बूँद से ब्रह्मा और शिव (की कोटि) का प्रभुत्व मिल सकता है, वही सुख (का समुद्र) अयोध्या में दसो दिशाओं में उमड़ रहा है। इसलिये मैं उसका वर्णन किस प्रकार करूँ (यह मेरी सामर्थ्य के बाहर है) ॥११॥ (अयोध्या के इस आनंद के द्वारा) यह बात स्पष्ट दिखला दी गई है कि जो रामचंद्रजी के चरणों का ध्यान करनेवाले हैं उनकी कैसी दशा होती है? (स्वयं भगवान् उनके यहाँ बालक बनकर आते हैं)। तुलसीदास को तो अविरल (सघन—

परिपूर्ण), अमल, अनुपम तथा दृढ़ (राम की) भक्ति मिली ॥ १२ ॥

अलंकार—दृष्टांत (१० में), रूपक (११ में)।

---

(२) कौशल्या का पुत्र-लालन

राग विलावल

सुभग सेज सोभित कौसल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिए ।
वार-वार विधु-वदन विलोकति लोचन चारु चकोर किए ॥ १ ॥
कवहुँ पौढ़ि पय-पान करावति, कवहूँ राखति लाइ हिए ।
वाल-केलि गावति हलरावति, पुलकति प्रेम-पियूष पिए ॥ २ ॥
विधि महेस मुनि सुर सिहात सव, देखत अंवुद ओट दिए ।
'तुलसिदास' ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न विए ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—सुभग = सुंदर। सेज=(सं० शय्या)। विधु-वदन=चंद्रमुख। चारु=सुंदर। पौढ़ि=लेटकर। पय=दूध। लाइ = लगाकर। वाल-केलि = लड़कों को फुसलानेवाले गीत। पियूष=(पीयूष) अमृत। सिहात=लालायित होते हैं। अंवुद=बादल। ओट दिए = आड़ से। विए=दूसरे ने।

भावार्थ—कौशल्या सुंदर शिशु राम को गोद में लिए हुए सुंदर शय्या पर शोभायमान हैं। वे बारंबार अपने नेत्रों को चकोर बनाकर उनके चंद्रमुख को निहार रही हैं ॥ १ ॥ कभी तो लेटकर उन्हें दूध पिलाने लगती हैं और कभी छाती से चिपका लेती हैं। वे उन्हें फुसलाने के लिये वाल-क्रीड़ा के गान गाती हैं और उन्हें हलरा रही हैं (जिससे वे रोवें न)। इस प्रकार कौशल्या प्रेमरूपी अमृत का पान करके (वात्सल्य-भाव दिखलाती हुई) पुलकायमान हो जाती हैं ॥२॥ इस शोभा को देखकर ब्रह्मा, महादेव, ऋषि, देवता सभी लालायित होते हैं (हमें कभी ऐसा अवसर न मिला कि भगवान को इस रूप में लेकर प्रेम-मग्न होवें) वे लोग (आकाश से) बादलों की आड़ में से इस छटा को देख रहे हैं। तुलसी-

दास कहते हैं कि रामचंद्रजी के द्वारा ऐसा सुख और किसी दूसरे ने नहीं प्राप्त किया (जैसा कौशल्या ने पाया) ॥ ३ ॥

अलं०—रूपक (!१ में और 'प्रेम-पियूष' में)।

---

(३) ज्योतिषी का आगमन

राग बिलावल

अवध आजु आगमी एकु आयो ।
करतल निरखि कहत सब गुन-गन, बहुत न परिचौ पायो ॥ १ ॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन 'संकर' नाम सुहायो ।
सँग सिसुसिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो ॥ २ ॥
पाँय पखारि पूजि, दियो आसन असन, बसन पहिरायो ।
मेले चरन चारु चार्यो सुत, माथे हाथ दिवायो ॥ ३ ॥
नखसिख बाल बिलोकि विप्र-तनु पुलक, नयन जल छायो ।
लै-लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो ॥ ४ ॥
जनम-प्रसंग कह्यो, कौसिक-मिस सीय-स्वयंबर गायो ।
राम, भरत, रिपुदवन, लखन को जय, सुख, सुजस सुनायो ॥ ५ ॥
'तुलसिदास' रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो ।
सनमान्यौ महिदेव, असीसत सानँद सदन सिधायो ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—आगमी=ज्योतिषी, दैवज्ञ । करतल=हथेली । परिचौ=(परिचय) ठीक-ठिकाना, पता । पखारि=धोकर । असन=भोजन, जलपान । बसन=वस्त्र । मेले चरन=चरणों पर गिराए । हाथ दिवायो=हाथ फेरवाया । प्रमोद=हर्ष । नअमायो=नहीं अँटता । कौसिक-मिस=विश्वामित्र के बहाने से । रिपुदवन=शत्रुघ्न । रहसबस=आनंदित । महिदेव=ब्राह्मण ।

भावार्थ—(कोई सखी या दासी कौशल्या से कह रही है) आज अयोध्या में एक दैवज्ञ (हस्तरेखा देखकर भाग्य की बातें बतानेवाला) आया है । वह

हथेली देखकर सबके गुण (शुभ बातें) बतलाता है। पर (वह कहाँ का है, कैसा है, इन सब बातों का) उसका पूरा परिचय (पता) नहीं मिलता ॥ १ ॥ वह ब्राह्मण बड़ा बूढ़ा है और प्रामाणिक बातें कहता है। उसका सुंदर नाम 'शंकर' है (बस, इतना ही पता चलता है) इसके साथ में एक छोटा-सा शिष्य भी है (ये काकभुशुंड हैं) ॥२॥ यह समाचार सुनकर कौशल्या ने उसे राजमहल के भीतर बुलवाया। उसके पैर धोए, पूजा की, बैठने के लिये आसन दिया, जलपान कराया और वस्त्र पहनाया। अपने चारों पुत्रों को उनके चरणों पर गिराया (प्रणाम कराया) और ब्राह्मण के द्वारा सिर पर हाथ फेरवाया ॥ ३ ॥ नख से शिखा तक बालकों को देखकर ब्राह्मण के शरीर में रोमांच हो आया। नेत्रों में (आनंद के) आँसू छा गए। उसने उन्हें गोद में ले-लेकर उनके कर-कमलों को भली-भाँति देखा। देखते ही उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। हर्ष हृदय में न अँट सका (इसलिये कि ये हमारे आराध्य स्वयं रामचंद्र ही हैं) ॥४॥ उसने पहले उनके जन्म के समय की बातें बताईं। फिर बतलाया कि विश्वामित्र नामक एक ऋषि इन्हें ले जायँगे और उसी बहाने से इनका विवाह (सीय-स्वयंवर) होगा। ब्राह्मण ने राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न चारो भाइयों की विजय, सुख, सुयश आदि की बातें सुनाईं ॥५॥ तुलसीदास कहते हैं कि ये बातें सुनकर रानियाँ अत्यंत हर्षित हुईं। सबकी मनचाही बात हुई (बच्चों का जैसा कुशल-मंगल चाहती थीं, वैसा ही ब्राह्मण ने भी बतलाया)। तब उन लोगों ने उस ब्राह्मण ज्योतिषी का संमान किया (दक्षिणा आदि दी)। वह उन्हें आशीर्वाद देता हुआ आनंदपूर्वक घर को लौट गया ॥ ६ ॥

अलं०—एकवाचकानुप्रवेश संकर ('कमल-कर' में)।

---

(४) शिशु-शोभा

राग बिलावल

आँगन खेलत आनँदकंद।
रघु-कुल-कुमुद सुखद चारु चंद॥

सानुज भरत लपन सँग सोहैं।
सिसु-भूपन-भूपित मन मोहैं॥
तन-दुति मोर-चंद जिमि झलकैं।
मनहुँ उमँगि अँग-अँग छवि छलकैं॥ १ ॥

कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजैं।
पंकज-पानि पहुँचियाँ राजैं॥
कठुला कंठ बघनहा नीके।
नयन-सरोज मयन-सरसी के॥ २ ॥

लटकन लसत ललाट लटूरीं।
दमकति द्वै-द्वै दँतुरियाँ रूरीं॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुंदा।
ललित बदन, वलि बालमुकुंदा॥ ३ ॥

कुलही चित्र-विचित्र झँगूलीं।
निरखत मातु मुदित मन फूलीं॥
गहि मनि-खंभ डिंभ डगि डोलत।
कलबल बचन तोतरे बोलत॥ ४ ॥

किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि।
देत परम सुख पितु अरु अंबनि॥
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है।
गावत प्रेम पुलकि 'तुलसी' है॥ ५ ॥

शब्दार्थ—सानुज=शत्रुघ्नसहित। मोर-चंद=मोर के पर की चंद्रिका। किंकिनि=करधनी। पैंजनि=घुँघरू। पानि=हाथ। कठुला=माला। बघनहा=बाघ के नख का बना गहना। मयन=(मदन) कामदेव। सरसी=सरोवर। लटकन=सिर के बालों में गुहे हुए रत्न। लटूरीं=लटें, घुँघुराले बाल। दमकति=चमकती

हैं। रूरी=सुंदर। मसि-बुंदा=काजल का टीका, ढिठौना। कुलही=टोपी। झँगूली =अँगरखा, कुर्ता। डिंभ=बच्चा। डगि=काँपते हुए, लड़खड़ाते हुए। कलबल= बच्चों का अस्पष्ट शब्द। अंब=माता। सुखमा=शोभा। हुलसी=उमड़ी है।

भावार्थ—आनंद के कंद (जड़) श्रीरामचंद्र आँगन में खेल रहे हैं। वे रघुवंशरूपी कुईं के लिये सुखदायक सुंदर चंद्रमा के समान हैं। उनके साथ शत्रुघ्न-सहित भरत और लक्ष्मण शोभायमान हैं। वे लोग बालकोचित गहनों से सुशोभित होकर सबके मन को मोह रहे हैं। (राम के) शरीर की कांति मोरपंख की चंद्रिका के समान झिलमिला रही है। ऐसा जान पड़ता है, मानो अंग-अंग से छवि छलक रही हो (छवि इतनी अधिक है कि शरीर में अँटती ही नहीं) ॥१॥ कमर में करधनी और पैर में घुँघरू बज रहे हैं। वे कर-कमलों में पहुँची (एक गहना) पहने हुए हैं। गले में सुंदर कठुला और बघ-नहा है। उनके नेत्र-कमल ऐसे हैं, मानो कामदेव के सरोवर के हों ॥२॥ भाल पर लटकन और लटें शोभायमान हैं। दो-दो छोटे-छोटे सुंदर दाँत चमक रहे हैं। मस्तक पर लगा काजल का टीका मुनियों के मन को भी मुग्ध कर देता है। ऐसे सुंदर मुखवाले बालमुकुंद (छोटे बालक) की बलिहारी ॥३॥ उनके सिर पर टोपी है और शरीर पर विचित्र रंग की झँगूली है। उन्हें देखकर माता मन में हर्षित होती है और पुलकित हो जाती है (फूल उठती है)। मणि के बने खंभों को पकड़कर बच्चे डगमगाते हुए चलते और तुतलाते हुए अस्पष्ट शब्द बोलते हैं ॥४॥ वे किलोल करते हुए झुककर (पृथ्वी में पड़ता हुआ) अपना प्रतिबिंब देखने लगते हैं। इस प्रकार वे माता और पिता को अत्यंत सुख देते हैं। उनकी उस समय की शोभा का केवल स्मरण करने से ही हृदय में वह (तत्कालीन) शोभा उमड़ने लगी। उसी शोभा को प्रेम से पुलकित होकर 'तुलसी' गाता है ॥५॥

अलं०—परंपरित रूपक (रघु-कुल-कुमुद चारु चंद), उपमा (मोर-चंद जिमि झलकैं), उत्प्रेक्षा (मनहु उमंगि०), एक-वाचकानुप्रवेश शंकर (पंकज-पानि), रूपक (नयन-सरोज मयन-सरसी के)।

(५) बाल-क्रीड़ा

राग कान्हरा

ललित सुतहि लालति सचु पाए।
कौसल्या कल कनक-अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाए ॥१॥
कटि किंकिनी, पैंजनी पाँयनि बाजति रुनझुनु मधुर रेंगाए।
पहुँची करनि, कंठ कठुला बन्यो केहरिनख-मनि-जरित जराए ॥२॥
पीत पुनीत बिचित्र झगुँलिया सोहति स्याम सरीर सोहाए।
दँतियाँ द्वै-द्वै मनोहर मुख-छबि, अरुन अधर चित लेत चोराए ॥३॥
चिबुक कपोल नासिका सुंदर, भाल तिलक मसिबिंदु बनाए।
राजत नयन मंजु अंजनजुत खंजन कंज मीन मद नाए ॥४॥
लटकन चारु भ्रुकुटिया टेढ़ी, मेढ़ी सुभग सुदेस सुभाए।
किलकि-किलकि नाचत चुटकी सुनि, डरपति जननि पानि छुटकाए ॥५॥
गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाए ।
बाल-केलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनँद न अमाए ॥६॥
देखत नभ घन-ओट चरित मुनि जोग समाधि बिरति बिसराए ।
'तुलसिदास' जे रसिक न एहि रस ते नर जड़ जीवत जग जाए ॥७॥

शब्दार्थ—लालति=खेला रही हैं। सचु पाए=सुखपूर्वक । कल=सुंदर। कनक-अजिर=सोने का आँगन । लाए=पकड़ाकर। रेंगाए=चलाने पर। केहरि-नख=बघनहा। जराए=(यहाँ) पहनाए। चिबुक=ठोढ़ी। मसिबिंदु=डिठौना। मद नाए=अभिमान नष्ट कर दिया। मेढ़ी=आगे के बालों को दोनों ओर गूँथकर बीच की चोटी के साथ बाँध देने को 'मेढ़ी' कहते हैं। सुदेस=सुंदर स्थान में। पानि=हाथ। छुटकाए=छुड़ा लेने पर। पूप=मालपुआ। न अमाए=नहीं अँटे। बिरति=वैराग्य। रस=आनंद। जाए=व्यर्थ।

भावार्थ—कौशल्या अपने मनोहर पुत्र को आनंदपूर्वक खेला रही है। सुंदर सोने के आँगन में उन्हें अपनी अँगुली पकड़ाकर चलना सिखला रही हैं ॥१॥ जब

वे चलाए जाते हैं तो कमर में करधनी और पैरों में घुँघुरू बड़ी मीठी ध्वनि से बजने लगते हैं। वे कलाइयों में पहुँची पहने हैं। गले में कठुला एवं मणि-जटित बघनहा शोभायमान है ॥२॥ सुंदर साँवले शरीर पर पवित्र पीले रंग की विचित्र झँगुली सुशोभित है। उनके छोटे-छोटे दो दाँत हैं। उनके मुख की छवि मनोहर है, ओठ लाल हैं। वे चित्त को चुराए लेते हैं (उन्हें देखकर चित्त मुग्ध हो जाता है) ॥३॥ उनकी ठोढ़ी, कपोल और नासिका सुंदर हैं। मस्तक पर टीका और डिठौना लगा हुआ है। मनोहर नेत्र अंजन लगने से शोभायमान हैं, उन्होंने खंजन, कमल और मछली के घमंड को नष्ट कर दिया है (उनके सामने ये उपमान नहीं ठहरते) ॥४॥ सुंदर लटकन (भाल पर) लटक रहे हैं। टेढ़ा-टेढ़ी भौंहें हैं। सुयोग्य स्थान पर सुंदर भेढ़ी शोभा दे रही हैं। माता जब चुटकी बजाती हैं तो उसे सुनकर वे किलोल करते हुए नाचने लगते हैं। जब वे माता का हाथ छोड़ देते हैं तो वह डरने लगती है (कि कहीं गिर न पड़ें) ॥५॥ जब गिर पड़ते हैं तो घुटनों पर टेककर उठते हैं। मालपुआ दिखलाने पर वे भाइयों को तुतली बोली से बुलाने लगते हैं। उनकी बाल-क्रीड़ा देखकर सब माताएँ हर्षित हो जाती हैं, आनंद में मग्न हो जाती हैं। इतनी अधिक मग्न कि आनंद हृदय में अँटता ही नहीं ॥६॥ आकाश में बादलों की आड़ से देवता लोग इनके चरित देखते हैं। मुनि इस शोभा को देखकर योग, समाधि और वैराग्य की बात भूल जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जो मनुष्य इस आनंद के रसिक नहीं हैं वे मूर्ख इस संसार में व्यर्थ ही जीते हैं ॥७॥

अलं०—ललितोपमा (४)।

---

(६) विश्वामित्र का आगमन

राग सारंग

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं।
सुख की सींव, अवधि आनँद की, अवध बिलोकि हौं पाइहौं ॥ १ ॥

सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं।
रामचंद्र-मुखचंद्र-सुधा-छवि नयन-चकोरनि प्याइहौं ॥ २ ॥
सादर समाचार नृप बुझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं।
'तुलसी' ह्वै कृतकृत्य आस्रमहिं राम-लखन लै आइहौं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—सुकृत=पुण्य। सींव=(सीमा)। अवधि=सीमा। हौं=मैं। लाइहौं=लगाऊँगा। बूझिहैं=पूछेंगे। कृतकृत्य=सफल-मनोरथ।

भावार्थ—(विश्वामित्रजी अपने मन में सोच-विचार करते हुए अयोध्या आ रहे हैं) आज मैं (राम के दर्शन कर) सभी पुण्यों का फल पा जाऊँगा। आज सुख की सीमा और आनंद की अवधि-स्वरूप अयोध्या का दर्शन कर सकूँगा ॥१॥ पुत्रों के सहित दशरथजी को देखूँगा और प्रेम से पुलककर उन्हें हृदय से लगाऊँगा। अपने नेत्ररूपी चंद्र को छविरूपी सुधा (अमृत) पिलाऊँगा (नेत्रों से भली भाँति रामजी का सौंदर्य देखूँगा) ॥ २ ॥ राजा आदरपूर्वक समाचार पूछेंगे, तब मैं अपनी (राक्षसों द्वारा मिलनेवाली विपत्ति की) कथा उन्हें सुनाऊँगा। फिर सफल-मनोरथ होकर, राम और लक्ष्मण को साथ लेकर अपने आश्रम को लौट जाऊँगा ॥३॥

अलं०—रूपक (२)।

---

(७) मख-रक्षण

राग कान्हरा

सोहत मग मुनि-सँग दोउ भाई।
तरुन तमाल चारु चंपक-छबि कबि-सुभाय कहि जाई ॥१॥
भूषन बसन अनुहरत अंगनि, उमगति सुंदरताई।
बदन-मनोज सरोज-लोचननि रही है लुभाइ लुनाई ॥२॥

अंसनि धनु, सर कर-कमलनि, कटि कसे हैं निखंग बनाई ।
सकल-भुवन-सोभा-सरवसु लघु लागति निरखि निकाई ॥३॥
महि मृदु पथ, घन छाँह, सुमन सुर बरष, पवन सुखदाई ।
जल-थल-रुह फल फूल सलिल सब करत प्रेम पहुनाई ॥४॥
सकुच सभीत बिनीत साथ गुरु बोलनि चलनि सुहाई ।
खग मृग चित्र बिलोकत बिच-बिच, लसति ललित लरिकाई ॥५॥
बिद्या दई जानि बिद्यानिधि, बिद्यहु लही बड़ाई ।
ख्याल दली ताड़का, देखि ऋषि देत असीस अघाई ॥६॥
बूझत प्रभु सुरसरि-प्रसंग कहि, निज-कुल-कथा सुनाई ।
गाधिसुवन-सनेह-सुख-संपति उर-आस्रम न समाई ॥७॥
बनवासी बटु जती जोगि-जन साधु-सिद्ध-समुदाई ।
पूजत पेखि प्रीति पुलकत तनु, नयन-लाभ लुटि पाई ॥८॥
मख राख्यो खलदल दलि भुजबल, बाजत बिबुध बधाई ।
निज-पथ-चरित-सहित 'तुलसी'-चित बसत लखन-रघुराई ॥९॥

शब्दार्थ—मग=(मार्ग) रास्ता । तरुन=युवा (यहाँ नया वृक्ष) । तमाल=एक वृक्ष (श्याम वर्ण) । चारु=सुंदर । सुभाय=स्वभावतः । कहि जाई=कही जाती है । अनुहरत=अनुकूल, मेल खानेवाले । बदन-मनोज=कामदेव के ऐसा मुख । सरोज=कमल । लुनाई=(लावण्य) सुंदरता । अंस=कंधा । कटि=कमर । बनाई=भली भाँति । महि=पृथ्वी । मृदु पथ=कोमल मार्ग । रुह=उत्पन्न होनेवाले । पहुनाई=आतिथ्य । सकुच=संकोच । खग=पक्षी । मृग=पशु । चित्र=विचित्र । बिद्यानिधि=विद्या के भांडार (राम) । ख्याल=खेल में । दली=मार डाली । ताड़का=एक राक्षसी, जो विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न किया करती थी । अघाई=संतुष्ट होकर । सुरसरि-प्रसंग=गंगा की कथा । गाधिसुवन=विश्वामित्र । बटु=ब्रह्मचारी । जती=संन्यासी । पेखि=देखकर । मख राख्यो=यज्ञ की रक्षा की । बिबुध=देवता ।

भावार्थ—(विश्वामित्रजी राम और लक्ष्मण को साथ लेकर मार्ग में अपने आश्रम को जा रहे हैं) मुनि के साथ मार्ग में जाते हुए दोनों भाई शोभा पा रहे हैं। उनकी शोभा देखकर कवि-स्वभाव से नवीन तमाल वृक्ष (श्यामवर्ण राम) और सुंदर चंपक (गौरवर्ण लक्ष्मण) की शोभा की उपमा कही जाती है (उन्हें देखकर यह उपमा स्वभावतः निकल पड़ती है) ॥ १ ॥ उनके गहने और वस्त्र उनके अंगों के अनुकूल ही हैं। उनके शरीर से सुंदरता उमड़ी-सी पड़ती है। कामदेव के समान उनके मुख हैं और नेत्र कमल के सदृश हैं। उनमें सुंदरता मुग्ध होकर रह गई है। बस गई है—अर्थात् मुख और नेत्र अत्यंत सुंदर हैं) ॥ २ ॥ कंधों पर धनुष रखे हैं, कर-कमलों में बाण लिए हैं और कमर में भली भाँति तरकस कसे हुए हैं। उनकी सुंदरता देखकर समस्त भुवनों की समस्त शोभा भी थोड़ी जान पड़ती है ॥३॥ (उनकी सुकुमारता देखकर) पृथ्वी ने मार्ग कोमल कर दिया है, बादल छाँह करते चलते हैं, देवता पुष्प बरसाते हैं और वायु सुखदायिनी होकर बहती है। जल या स्थल में सभी स्थानों में उत्पन्न होनेवाले फूल और फल तथा (सरोवरों आदि का) जल सभी उनका प्रेमपूर्ण आतिथ्य करते हैं (सभी उनके अनुकूल हैं) ॥ ४ ॥ साथ में गुरु हैं, इसीसे वे सभीत और विनम्र होकर बोलने एवं चलने में संकोच करते हैं। उनका ऐसा करना बड़ा सुहावना जान पड़ता है। बीच-बीच में वे विचित्र रूप-रंग के पशु और पक्षियों को देखने लगते हैं। उनका यह मनोहर लड़कपन बड़ा भला लगता है ॥ ५ ॥ गुरु ने उन्हें विद्यानिधि जानकर भी उन्हें विद्या दी। उनके कारण विद्या को भी बड़प्पन मिला (विद्या के कारण रामजी का बड़प्पन नहीं, विद्या ही उनके द्वारा बड़ाई पाती है)। उन्होंने खेल में ही ताड़का को मार डाला। यह देखकर विश्वामित्र ऋषि ने उन्हें अत्यंत संतोष के साथ आशीर्वाद दिया ॥ ६ ॥ रामजी ने मुनि से गंगा की कथा पूछी। तब मुनि ने वह कथा सुनाई और साथ ही अपने वंश की कथा भी कही। विश्वामित्रजी के स्नेह और सुख की संपत्ति उनके हृदयरूपी आश्रम में नहीं अँटती (उनके हृदय में अत्यधिक स्नेह और सुख है) ॥ ७ ॥ वन में बसनेवाले ब्रह्मचारी, संन्यासी, योगी, साधु, सिद्ध आदि के समूह उन्हें देखकर उनकी पूजा करते हैं। प्रेम के

कारण उन सबके शरीर में रोमांच हो जाता है। वे लोग अपने नेत्रों का लाभ (सुंदर से सुंदर वस्तु देखना) लूटे लेते हैं ॥ ८ ॥ दुष्टों के समूह को अपनी भुजाओं के बल से नष्ट करके उन्होंने यश की रक्षा की। (इसलिये) देवता लोग बधाई बजाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि अपने इन मार्ग के चरितों-सहित राम और लक्ष्मण मेरे हृदय में नित्य वास करें ॥ ९ ॥

अलं०—उपमा (१, २), रूपक (३, ७), उत्प्रेक्षा (२)।

---

(८) मिथिला में कौतूहल

राग गौरी

राम-लषन जब दृष्टि परे, री !
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो विधि विविध विदेहु करे, री ॥१॥
धनुष-जज्ञ कमनीय अवनि-तल कौतुक ही भए आय खरे, री।
छवि-सुरसभा मनहुँ मनसिज के कलित कलपतरु रूप[1] फरे, री ॥२॥
सकल काम बरषत मुख निरखत, करषत चित हित-हरष-भरे, री।
'तुलसी' सबै सराहत भूपहिं भले पैंत पासे सुढर ढरे, री ॥३॥

शब्दार्थ—बिधि=ब्रह्मा। बिबिधि=अनेक। बिदेह=(१) बिना देहवाला, (२) राजा जनक। कमनीय=सुंदर। अवनि-तल=पृथ्वी पर। कौतुक=खेल। सुरसभा=देवसभा। मनसिज=कामदेव। कलित=सुंदर। रूप=सौंदर्य। काम=कामना। करषत=खींचते हैं। हित=प्रेम। पैंत=दाँव। पासे सुढर ढरे=अच्छे पासे पड़े (अनुकूल कार्य हुआ)।

भावार्थ—(कोई सखी दूसरी सखी से कह रही है) जब से राम और लक्ष्मण दिखाई पड़े हैं, तब से जनकपुर में सब लोग उन्हीं दोनों भाइयों को देख रहे हैं। मानो ब्रह्मा ने अनेक विदेह (राजा जनक) उत्पन्न कर दिए हैं [क्योंकि

---

१ पाठांतर—रूख।

उन्हें देखकर वे लोग विदेह (बिना देह के, देह ज्ञान-शून्य) हो जाते हैं, तन-बदन की सुध जाती रहती है] ॥१॥ अत्यंत सुंदर धनुष यज्ञ की भूमि पर ये लोग केवल कौतूहल-वश आ गए हैं। इनका सौंदर्य देखने से ऐसा जान पड़ता है, मानो छविरूपी देवसभा में कामदेव के सुंदर कल्पवृक्ष में सौंदर्यरूपी फल फले हैं (वे अत्यंत सुंदर हैं) ॥२॥ ये मुख दिखाते ही सब कामनाओं की वर्षा करने लगते हैं (इनके मुख को देखते ही सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं) ॥२॥ ये प्रेम और हर्ष से भरे हुए हैं और चित्त को आकर्षित कर लेते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि सभी लोग राजा जनक की प्रशंसा करते हैं। राजा को अच्छा दाँव हाथ लगा, उनके पासे बहुत अच्छे पड़े (क्योंकि सीताजी के उपयुक्त वर राम मिले) ॥ ३ ॥

अलं०—उत्प्रेक्षा (१, २), श्लेप (विदेह), रूपक (२), व्यतिरेक (काम बरषत मुख निरखत), लोकोक्ति (३)।

---

(६) स्त्रियों की अभिलाषा

राग सारंग

जब तें राम-लपन चितए, री।
रहे इकटक नर-नारि जनकपुर, लागत पलक कलप बितए, री ॥१॥
प्रेम-बिबस माँगत महेस सों देखत ही रहिए नित ए, री।
कै ए सदा बसहु इन्ह नयनन्हि, कै ए नयन जाहु जित ए, री ॥२॥
कोउ समुझाइ कहै किन भूपहि बड़े भाग आए इत ए, री।
कुलिस-कठोर कहाँ संकर-धनु, मृदु मूरति किसोर कित ए, री ॥३॥
बिरचत इन्हहिं बिरंचि भुवन सब सुंदरता खोजत रितए, री।
'तुलसिदास' ते धन्य जनम जन मन क्रम बच जिन्ह के हित ए, री ॥४॥

शब्दार्थ—चितए=देखे। लागत पलक=पलक के बंद होने पर। कलप=कल्प। जित=जहाँ। इत=यहाँ। कुलिस=वज्र। कित=कहाँ। बिरंचि=ब्रह्मा। रितए=

खाली कर दिए। जन=मनुष्य। क्रम=कर्म (के द्वारा)। बच=वचन। हित=प्रिय।

भावार्थ—(सखी-वाक्य अन्य सखी-प्रति) जब से जनकपुर के लोगों ने राम और लक्ष्मण को देखा है, तब से सभी स्त्री-पुरुषों की टकटकी बँध गई है। उन्हें पलक का लग जाना भी कल्प के समान बीतता जान पड़ता है (राम के देखे बिना) ॥ १ ॥ वे लोग प्रेम के वश में होकर महादेवजी से यही माँगते हैं (हमें ऐसा वरदान दीजिए) कि इन्हें नित्य देखते रहें। चाहे ये ही सदा हमारे नेत्रों में निवास करें अथवा जहाँ ये रहते हैं वहीं ये नेत्र भी चले जायँ (जिससे हम इनके सौंदर्य को निरंतर देख सकें) ॥ २ ॥ कोई राजा जनक से यह समझाकर क्यों नहीं कह देता कि ये बड़े सौभाग्य से यहाँ आ गए हैं। (इनके लिये उनकी धनुष चढ़ाने की प्रतिज्ञा ठीक नहीं जँचती क्योंकि) कहाँ तो वह शंकर का वज्र के समान कठोर धनुष और कहाँ ये किशोर अवस्था (१५ वर्ष) के सुकुमार शरीरवाले राजकुमार ॥ ३ ॥ (ये सुंदर इतने हैं कि) इनकी सृष्टि करते समय ब्रह्मा ने समस्त भुवनों से सुंदरता खोज-खोजकर एकत्र की थी, इसलिये सब भुवन सौंदर्य से रहित हो गए हैं (अर्थात् ये समस्त भुवन के सुंदरतम व्यक्तियों एवं पदार्थों से भी बढ़कर सुंदर हैं—अत्यंत सुंदर हैं) तुलसीदास कहते हैं कि उन मनुष्यों का जन्म धन्य है, जिनके मनसा, वाचा, कर्मणा ये प्रिय हैं ॥ ४ ॥

अलं०—प्रथम विषम (३), पर्यायोक्ति, अप्रस्तुत,प्रशंसा (४), विकल्प (२)।

---

(१०) धनुष-खंडन

राग मलार

जब दोउ दसरथ-कुँवर बिलोके।
जनक-नगर-नर-नारि मुदित-मन निरखि नयन पल रोके ॥१॥
बय किसोर घन-तड़ित-बरन तनु नखसिख अंग लोभारे।
दै चित, कै हित, लै सब छबि-बित बिधि निज हाथ सँवारे ॥२॥

संकट नृपहि, सोच अति सीतहि, भूप सकुचि सिर नाए।
उठे राम रघुकुल-कल-केहरि गुरु-अनुसासन पाए ॥३॥
कौतुक ही कोदंड खंडि प्रभु, जय अरु जानकि पाई।
'तुलसिदास' कीरति रघुपति की मुनिन्ह तिहूँ पुर गाई ॥४॥

शब्दार्थ—कुँवर=कुमार। पल=पलकें। बय=अवस्था। घन=बादल। तड़ित=बिजली। बरन=(वर्ण) रंग। लोभारे=लुभावने। दै चित=मन लगाकर। कै हित=प्रेमपूर्वक। बित=धन। कल=सुंदर। केहरि=सिंह। अनुसासन=आज्ञा। पाए=पाने पर। कौतुक=खेल। कोदंड=धनुष। जय=विजय।

भावार्थ—जब जनकपुर के स्त्री-पुरुषों ने दशरथ के दोनों कुमारों (राम-लक्ष्मण) को देखा तो उनके मन हर्षित हो गए। उन्हें देखकर उनके नेत्रों की पलकें रुक गईं (वे टकटकी लगाकर उन्हें देखने लगे) ॥१॥ उनकी अवस्था किशोर है और उनके शरीर का रंग बादल (श्याम रंग राम) और बिजली (पीला रंग, गौरवर्ण लक्ष्मण) का सा है। (पैर के) नख से लेकर शिखा पर्यंत उनके सभी अंग लुभावने हैं। उन्हें ब्रह्मा ने मन देकर और प्रेमपूर्वक छविरूपी धन लगाकर अपने ही हाथों से भली भाँति सँवारकर बनाया है (अर्थात् उनके सभी अंगों की बनावट सुडौल और मनोहर है) ॥२॥ राजा जनक बड़े संकट में पड़ गए हैं (कि मैंने धनुष चढ़ाने की शर्त तो लगा दी है, पर ये राजकुमार संभवतः उसे पूर्ण न कर सकेंगे, इसलिये जानकी के योग्य वर हमें न मिलेगा)। सीता को तो अत्यंत सोच है (क्योंकि वे मन से राम को वरण कर चुकी हैं, यदि धनुष न टूटा तो वे असमंजस में पड़ जायँगी)। स्वयंवर में आए हुए राजाओं ने सकुचकर अपने सिर नीचे कर लिए हैं (इसलिये कि ये तेजस्वी राजकुमार यदि धनुष तोड़ देंगे तो हमें अत्यंत लज्जित होना पड़ेगा)। इसी समय गुरु विश्वामित्र की आज्ञा पाकर रघुवंश के सुंदर सिंह राम उठे ॥३॥ उन्होंने खेल में ही (सरलता से) धनुष को तोड़ डाला। इसलिये उन्हें विजय और जानकी दोनों मिलीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचंद्रजी की कीर्ति तीनों लोकों में मुनि लोग गाने लगे ॥४॥

अलं०—अप्रस्तुतप्रशंसा (२), रूपक (छवि-चित) ।

---

(११) राम-सीता की जोड़ी

राग केदारा

राजति राम-जानकी-जोरी ।
स्याम-सरोज जलद-सुंदर वर, दुलहिनि तड़ित-बरन तनु गोरी ॥१॥
ब्याह-समय सोहति वितान-तर, उपमा कहुँ न लहति मति मोरी ।
मनहुँ मदन-मंजुल-मंडप महँ छवि-सिंगार-सोभा इक ठोरी[1] ॥२॥
मंगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी ।
कनककलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भइ भोरी ॥३॥
इत वसिष्ठ मुनि उतहिं सतानँद, वंस-बखान करैं दोउ ओरी ।
इत अवधेस उतहिं मिथिलापति, भरत अंक सुख-सिंधु हिलोरी ॥४॥
मुदित जनक, रनिवास रहसवस, चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी ।
गान निसान वेदधुनि सुनि सुर बरषत सुमन, हरष कहै को री ! ॥५॥
नयनन को फल पाइ प्रेमवस सकल असीसत ईस निहोरी ।
'तुलसी' जेहि आनंद मगन मन क्यों रसना बरनै सुख सो री ! ॥६॥

शब्दार्थ—तड़ित-बरन=बिजली का सा रंग । वितान=चँदवा । वितान तर=मंडप के नीचे । इक ठोरी=एक स्थान पर । ग्रथित=गाँठ दी हुई, जोड़ी हुई, बाँधी हुई । चूनरी=(सीताजी की) धोती । पिछोरी=(रामजी का) दुपट्टा । सारद=सरस्वती । भोरी=अवाक् । सतानँद=(सदानंद) जनक के पुरोहित । बखान=वर्णन (शाखोच्चार) । ओरी=ओर, तरफ, पक्ष । भरत अंक= गोद में भरते हैं । रहसबस=हर्षित । निसान=बाजा । ईस=महादेव । निहोरी= मनाकर, विनय करके । रसना=जिह्वा ।

---

१. पाठां०—सोठ थोरी ।

भावार्थ—(एक सखी दूसरी सखी से कह रही है) राम और सीता की जोड़ी बड़ी सुंदर जान पड़ती है। वर (दूल्हा रामचंद्र) नीले कमल अथवा बादल के समान श्यामवर्ण हैं और दुलहिन (सीता) बिजली के वर्णवाली गौर रंग की हैं ॥१॥ ब्याह के समय यह जोड़ी मंडप के नीचे जिस प्रकार शोभित है उसकी उपमा देने के लिये मेरी बुद्धि को कहीं उपमान ही नहीं मिलता। ऐसा जान पड़ता है, मानो कामदेव के सुंदर मंडप में छवि (सीताजी—उज्ज्वल वर्ण) और शृंगार (श्यामवर्ण—राम) की शोभा एकत्र कर दी गई है, (मानो ये संयोग से ही एकत्र हो गए हैं) ॥ २ ॥ दोनों (वर और कन्या) मंगलमय हैं। इनके अंग अत्यंत सुंदर हैं। (कन्या की) चूनरी और (वर का) पीला दुपट्टा दोनों जोड़ दिए गए हैं। वे लोग (गँठबंधन हो जाने पर) सुवर्ण के कलश को भाँवरें दे रहे हैं (प्रदक्षिणा कर रहे हैं)। उस समय का उनका रूप (सौंदर्य) देखकर सरस्वती (भी) भौचक्की सी हो गई है (उससे भी उनका वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह शोभा अनुपम है) ॥३॥ इधर (दशरथ की ओर) वसिष्ठ मुनि हैं और उधर (जनक की ओर) सदानंद मुनि हैं। दोनों मुनि दोनों पक्षों के वंशों का वर्णन (शाखोच्चार) कर रहे हैं। इधर अवध के नरेश हैं और उधर मिथिला के स्वामी हैं। दोनों सुखरूपी समुद्र को हिलोर कर अपनी गोद में भर रहे हैं (दोनों अत्यंत सुखी हैं) ॥४॥ राजा जनक प्रसन्न हैं, रानियाँ हर्षित हैं, चतुर स्त्रियाँ उस जोड़ी को देखकर तृण तोड़ देती हैं (जिससे नजर न लगे)। गाना, बाजा और वेद की ध्वनि सुनकर देवता लोग आकाश से पुष्प बरसाते हैं। उस समय के हर्ष का वर्णन कौन कर सकता है ? (कोई नहीं) ॥५॥ अपने नेत्रों का फल (अत्यंत सुंदर वस्तु देखना) पाकर, स्नेह के कारण सभी लोग महादेव को मनाते हुए आशीर्वाद (युग-युग जीयें आदि) देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिस सुख में मन आनंदमग्न है उसका वर्णन जिह्वा कैसे कर सकती है (अर्थात् उसका आनंद मन द्वारा ही उठाया जा सकता है; वह अनुभव करने की बात है, मुख द्वारा कहने की नहीं) ॥६॥

अलं०—उपमा (१), उत्प्रेक्षा (२), असंबंधातिशयोक्ति (३), रूपक (सुख-सिंधु), काव्यलिंग (६)।

(१२) वर-वधू-शोभा

राग केदारा

दूलह राम, सीय दुलही री ! ।
घन-दामिनि-बर बरन, हरन-मन सुंदरता नखसिख निबही, री ॥१॥
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि-अवली लखि ठगि सी रही, री ।
जीवन-जनम-लाहु लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री ॥२॥
सुखमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमिय-मय कियो है दही, री ।
मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल-भुवन-छबि मनहुँ मही, री ॥३॥
'तुलसिदास' जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही, री ।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री ॥४॥

शब्दार्थ—निबही=निर्वाह हो गया । लाहु=लाभ । सही=सचमुच । सुखमा=शोभा । सुरभि=गाय । छीर=(क्षीर) दूध । मयन=(मदन) कामदेव । अमिय=अमृत । मही=मट्ठा । रासि=(राशि) अन्न का ढेर । सिला=खेत में चिटककर गिरे हुए अन्न के दाने । लवनि=मजदूरी में पाया हुआ अन्न का छोटा-सा बोझ ।

भावार्थ—(सखी का वचन सखी-प्रति) रामचंद्र दूल्हा हैं और सीता दुलहिन । ये दोनों बादल (राम) और बिजली (सीता) के से सुंदर रंग के हैं । इनकी सुंदरता नख से शिखा पर्यंत भली भाँति निभ गई है (एक सी) है, (इसलिये) मन को हर लेती है ॥१॥ ब्याह के गहनों और वस्त्रों से सुशोभित इन दोनों व्यक्तियों को देखकर सखियों का समुदाय ठगा-सा गया है (वे सबकी सब इनकी शोभा पर मुग्ध हैं) । वे मन में सोच रही हैं कि संसार में जन्म लेने और जीने का लाभ तथा नेत्र पाने का फल यही है, इतना ही है (कि ऐसे लोगों की सेवा की जाय, ऐसा सौंदर्य देखने को मिले) । हमने आज यह सब सचमुच प्राप्त कर लिया है ॥ २ ॥ जान पड़ता है कि शोभारूपी गाय से श्रृंगाररूपी दूध दुहकर कामदेव ने अमृत से युक्त दही तैयार किया है । उस दही को मथकर

उसने (कोमल और सुंदर) मक्खन निकालकर सीता और राम का निर्माण किया है। इन्हें देखने से ऐसा जान पड़ता है, मानो समस्त संसार की छवि (उस दही के मथने से बचा हुआ) मट्ठा (निःसार) है (अर्थात इनके सामने संसार की सुंदर से सुंदर वस्तु कुछ नहीं है) ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि राम और सीता की जोड़ी देखने पर जो अद्वितीय शोभा और सुख होता है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो ब्रह्माने (राम और सीतारूपी) सौंदर्य की राशि लगा दी है। इसमें (मजदूरी करने के कारण) रति और कामदेव को थोड़ी सी लवनी मिली है और (इसके अतिरिक्त) उन लोगों ने खेत में पड़े हुए अन्न के दानों को चुन लिया है (इसीसे उनकी शोभा बहुत थोड़ी है। तात्पर्य यह कि रति और कामदेव इस जोड़ी की शोभा के समक्ष कुछ नहीं हैं) ॥ ४ ॥

अलं०—उपमा (१), रूपकाश्रित उत्प्रेक्षा (३, ४)।

अयोध्याकांड

(१३) कौशल्या की व्याकुलता

राग सोरठ

राम ! हौं कौन जतन घर रहिहौं ?
बार-बार भरि अंक गोद लै 'ललन' कौन सों कहिहौं ॥१॥
इहि आँगन बिहरत मेरे बारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हें।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत बहु बिनोद तुम्ह कीन्हें ॥२॥
जिन्ह स्रवननि कल बचन तिहारे सुनि-सुनि हौं अनुरागी।
तिन्ह स्रवननि बन-गमन सुनति हौं, मो तें कौन अभागी ? ॥३॥
जुग सम निमिष जाहिं रघुनंदन-बदन-कमल बिनु देखे।
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ? ॥४॥

'तुलसीदास' प्रेमबस श्रीहरि देखि विकल महतारी।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि-फिरि आवन कह्यो मुरारी ॥५॥

शब्दार्थ—कौन जतन=किस प्रकार। भरि अंक=अँकवार में भरकर, गोद में लेकर। ललन=बच्चों का प्यार-भरा संबोधन। बारे=बालक। बलि=बलिहारी जाती हूँ। मुरारी=मुर दैत्य के शत्रु, विष्णु (राम)।

भावार्थ—(कौशल्या राम से कह रही हैं) हे राम! मैं किस प्रकार घर में रह सकूँगी। अब मैं बारंबार आलिंगन करके और गोद में लेकर किसे 'ललन' कहकर बुलाऊँगी ॥१॥ हे मेरे पुत्र! तुमने अनेक बालकों के साथ इस आँगन में जो बहुत से खेल किए हैं, उनका स्मरण करके प्राण किस प्रकार रह सकते हैं ॥२॥ जिन कानों से मैं तुम्हारे सुंदर वचनों को सुनकर अनुरक्त हुई थी उन्हीं कानों से अब तुम्हारे वन जाने का समाचार सुन रही हूँ। मुझसे बढ़कर अभागिनी और कौन है? (कोई नहीं) ॥३॥ रामचंद्र के मुखकमल को बिना देखे यदि एक निमेष भी बीतता था तो युग के समान जान पड़ता था, अब उन्हीं रघुनंदन के वियोग में चौदह वर्ष बीतते-न-बीतते शरीर रह सकता है? (नहीं)। और यदि चौदह वर्ष बीतने पर भी शरीर रह गया तो क्या प्रेम का लेखा यही है? (क्या इसी का नाम प्रेम है? प्रेम में ऐसा नहीं होना चाहिए, मुझे शरीर त्याग देना चाहिए) ॥४॥ तुलसीदास कहते हैं कि माता को व्याकुल देखकर श्रीहरि (विष्णु अर्थात् राम) का गला भर आया, नेत्रों से आँसू बहने लगे उन्होंने बारंबार माता से लौट आने की बात कही (अर्थात् मैं अवश्य लौट आऊँगा) ॥ ५ ॥

अलं०—रूपक (बदन-कमल)।

---

(१४) सीता-प्रबोधन

राग बिलावल

रहहु भवन हमरे कहे, कामिनि!
सादर सासु-चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृह-स्वामिनि ॥१॥

राजकुमारि ! कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मृदु पद गजगामिनि ।
दुसह बात,बरषा, हिम, आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि ? ॥२॥
हौं पुनि पितु-आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि ।
'तुलसिदास' प्रभु-बिरह-बचन सुनि सहि न सकी मुरछित भइ भामिनि ॥३॥

शब्दार्थ—कामिनि=स्त्री । तुम्हरे=तुम्हारे लिये । हित=भला । गृह-स्वामिनि=गृहणी । कंटक=काँटों से भरा हुआ । मग=मार्ग । गजगामिनि=हाथी की सी चालवाली । दुसह=जो सह्य न हो । बात=वायु । हिम=पाला । आतप=धूप, गर्मी । जामिनि=(यामिनी) रात्रि । दुति-दामिनि=बिजली की सी कांति वाली । भामिनि=स्त्री ।

भावार्थ—(रामचंद्र सीता को समझा रहे हैं) हे कामिनि, (यदि तुम और किसी के कहने से घर में नहीं रहती हो तो) मेरे ही कहने से घर में रह जाओ । यहाँ रहकर नित्य आदरपूर्वक सास के चरणों की सेवा करो । हे गृह-स्वामिनि, तुम्हारे लिये यह अत्यंत भली बात होगी ॥१॥ हे राजकुमारि, तुम गज-गामिनी हो और वन का मार्ग बड़ा कठोर एवं काँटों से भरा हुआ है । अपने कोमल चरणों से तुम उसपर कैसे चल सकोगी । तुम असंख्य दिनों और रातों तक न सहने योग्य वायु, वर्षा, पाला, घाम ये सब किस प्रकार सह सकोगी, तुम इनके सहने योग्य नहीं हो ॥ २ ॥ पिता की आज्ञा को प्रमाणित करके (चौदह वर्षों तक वन में रहकर) हे बिजली सी कांतिवाली ! मैं बहुत शीघ्र वहाँ से लौट आऊँगा । तुलसीदास कहते हैं कि रामचंद्रजी की ये वियोग की बातें सुनकर सीता उसे सहन न कर सकीं, मूर्छित हो गईं (अर्थात् जो वियोग की बातें नहीं सहन कर सकता, मूर्छित हो जाता है, वह चौदह वर्षों तक वियुक्त कैसे रह सकता है ?) ॥३॥

अलं०—परिकर (गृह-स्वामिनि, गजगामिनि, भामिनि), लुप्तोपमा (गजगामिनि, दुति-दामिनि) ।

---

(१५) सीता का उत्तर

राग बिलावल

कृपानिधान सुजान प्रानपति संग विपिन ह्वै आवोंगी।
गृह तें कोटि-गुनित सुख मारग चलत, साथ सचु पावोंगी ॥१॥
थाके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलावोंगी।
नयन-चकोरनि मुख-मयंक-छवि सादर पान करावोंगी ॥२॥
जो हठि नाथ राखिहौ मो कहँ तौ सँग प्रान पठावोंगी।
'तुलसिदास' प्रभु-बिनु जीवत रहि क्यों फिरि वदन देखावोंगी ? ॥३॥

शब्दार्थ—बिपिन=वन। सचु=सुख। थाके=थकने पर। चापौंगी=दबाऊँगी। स्रम=थकावट। बाउ=वायु। मयंक=(मृगांक)। चंद्रमा। हठि=हठ करके। पठावोंगी=भेजूँगी। जीवत रहि=जीती रहकर। वदन=मुख।

भावार्थ—(सीता रामचंद्र को उत्तर देती हैं) मैं कृपालु, सुजान और प्राणपति (आप) के साथ (भली भाँति) जंगल हो आऊँगी। आपके साथ मार्ग में चलने में मुझे घर से करोड़ गुना सुख मिलेगा ॥ १ ॥ जब आपके पैर थक जायँगे तो मैं उन्हें दबाऊँगी और जब आप श्रमित होंगे (थक जायँगे, शरीर में पसीना हो आवेगा) तब मैं वायु करूँगी (पंखा झलूँगी)। मैं अपने नेत्ररूपी चकोरों को आदरपूर्वक आपके मुखरूपी चंद्रमा की छवि पान कराया करूँगी (मैं आपका मुख देखा करूँगी, जिससे नेत्रों को सुख मिलेगा) ॥२॥ यदि आप हठ करके मुझे घर पर ही छोड़ जायँगे तो मैं अपने प्राणों को आपके साथ भेज दूँगी (अर्थात् आपके जाते ही मेरे प्राण निकल जायँगे)। (तुलसीदास कहते हैं क्योंकि) आपके बिना यदि मैं जीती रह गई तो फिर अपना कौन सा मुख दिखलाऊँगी (मैं आपके बिना किसी प्रकार जीना नहीं चाहती) ॥३॥

अलं०—रूपक (२), पर्यायोक्ति (३)।

(१६) मार्गवासियों का कौतूहल

राग भैरव

पथिक पयादे जात पंकज-से पाय हैं।
मारग कठिन, कुस-कंटक-निकाय हैं ॥१॥
सखी, भूखे-प्यासे पै चलत चित चाय हैं।
इन्हके सुकृत सुर संकर सहाय हैं ॥२॥
रूप सोभा प्रेम के से कमनीय काय हैं।
मुनिबेष किए किधौं ब्रह्म जीव माय हैं ॥३॥
बीर बरियार धीर धनुधर-राय हैं।
दसचारि-पुर-पाल आली उरगाय हैं ॥४॥
मग-लोग देखत करत हाय-हाय हैं।
बन इनको तो बाम बिधि कै बनाय हैं ॥५॥
धन्य ते जे मीन से अवधि-अंबु-आय हैं।
'तुलसी' प्रभु सों जिन्हहूँ के भले भाय हैं ॥६॥

शब्दार्थ—पयादे=पैदल। पंकज-से=कमल के समान (कोमल) पाय=पैर। निकाय=समूह। चाय=चाव। सुकृत=पुण्य। सुर=देवता। सहाय=सहायक। कमनीय=सुंदर। काय=शरीर। माय=माया। बरियार=बली। राय=राजा, श्रेष्ठ। दसचारि-पुर-पाल=चौदहो भुवनों के पालक। उरगाय=(उरू-गाय) विष्णु। बाम बिधि कै बनाय हैं=(विधि बनाय कै बाम हैं) ब्रह्मा बहुत अधिक टेढ़े हैं। अवधि-अंबु-आव=जो अवधिरूपी जल की आयुवाले हैं (अर्थात् जो अवधि की आशा से जीवित हैं)। भाय=(भाव) प्रेम।

भावार्थ—(मार्गवासी स्त्रियाँ परस्पर बातें कर रही हैं) कमल के समान (कोमल) पैरवाले पथिक मार्ग में पैदल ही चले जा रहे हैं। (उनके पैर तो कोमल हैं, पर मार्ग कठोर है और कुश एवं कंटकों के समूह से भरे हुए हैं ॥१॥ हे सखी, यद्यपि ये भूखे और प्यासे हैं, पर चाव के साथ (आनंदपूर्वक)

चलते हैं। इनके पुण्य के कारण देवता और शंकर ही इनके सहायक हैं (नहीं तो इस प्रकार ये कैसे चल सकते थे) ॥२॥ (इनके शरीर ऐसे हैं कि) रूप (राम), शोभा (सीता), प्रेम (लक्ष्मण) के ही सुंदर शरीर हों (अर्थात् रूप, शोभा और प्रेम स्वयं शरीर धारण करके चल रहे हैं—ये अत्यंत सुंदर हैं)। अथवा ब्रह्म (राम), जीव (लक्ष्मण), माया (सीता) ने मुनिवेश धारण कर लिया है ॥३॥ ये वीर, बली और धीर हैं। ये धनुर्धरों में श्रेष्ठ हैं। हे सखी, (मानो) चौदहो भुवनों के पालनेवाले विष्णु ही हों ॥४॥ मार्गवासी उन लोगों को मार्ग में जाते देखकर हाय-हाय करते हैं (अत्यंत दुखी होते हैं) और कहते हैं कि यदि ब्रह्मा ने इनके ऐसे लोगों को वन दिया है तो वह बहुत अधिक टेढ़ा है ॥५॥ वे लोग धन्य हैं जो इनके लिये अवधिरूपी जल से जीनेवाली मछली बने हैं (जिस प्रकार मछली जल से जीती है—उसकी आयु जल ही है, उसी प्रकार अवधि के आधार पर जो लोग जी रहे हैं—अर्थात् जो अवधि की आशा में अपने प्राण रखे हैं अन्यथा मर जाते)। तुलसीदासजी कहते हैं कि राम से जिनका सद्भाव है वे भी धन्य हैं ॥६॥

अलं०—लुप्तोपमा (पंकज-से पाय), पूर्णोपमा (रूप०३), संदेह (३), रूपक (६)।

---

(१७) चित्रकूटवासियों का संवाद

राग सारंग

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी।
स्याम गौर धनु-बान-तूनधर चित्रकूट अब आइ रहे, री ॥१॥
इन्हहिं बहुत आदरत महामुनि समाचार मेरे नाह कहे, री।
बनिता-बंधु-समेत बसे बन, पितु-हित कठिन कलेस सहे, री ॥२॥
वचन परसपर कहति किरातिनि पुलक गात, जल नयन बहे, री।
'तुलसी' प्रभुहि बिलोकति एकटक लोचन जनु बिनु पलक लहे, री ॥३॥

शब्दार्थ—उपही=(हिं० ऊपर+हा (प्रत्य) अपरिचित, परदेशी । तून=तरकस । नाह=(नाथ) पति । बनिता=स्त्री । बंधु=भाई । हित=लिये । किरातिनि=किरात की स्त्री । लहे=पाए ।

भावार्थ—(किरातों की स्त्रियाँ परस्पर बात-चीत कर रही हैं) हे सखी, ये परदेशी कोई शिकारी राजकुमार जान पड़ते हैं । (इसीसे) साँवले और गोरे शरीरवाले ये धनुष, बाण और तरकस लिए हुए हैं और चित्रकूट में आकर बस गए हैं ॥१॥ बड़े-बड़े मुनि (तक) इनका बड़ा आदर करते हैं । मेरे पति ने मुझसे यह समाचार कहा है कि ये अपनी स्त्री और भाई के साथ वन में वास कर रहे हैं, इन्होंने पिता के लिये (पिता के वचनों की सत्यता प्रमाणित करने के लिये) ऐसा कठिन क्लेश सहन किया है ॥२॥ आपस में इस प्रकार की बातें करते-करते किरातिनियों के शरीर में रोमांच हो गया—और नेत्रों से आँसू बहने लगे । तुलसीदासजी कहते हैं कि वे लोग रामचंद्र को टकटकी लगाकर देख रही हैं, मानो उन्हें बिना पलकों के ही नेत्र मिले हों (रामचंद्रजी का सौंदर्य देखने में उनकी पलकें ही नहीं लगतीं) ॥३॥

अलं०—उत्प्रेक्षा (३) ।

---

(१८) कैकेयी-भर्त्सना

राग गौरी

ऐसे तैं क्यों कटु वचन कह्यो, री ?
'राम जाहु कानन' कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो, री ॥१॥
दिनकर-बंस, पिता दसरथ से राम-लषन से भाई ।
जननी ! तू जननी ? तौ कहा कहौं, बिधि केहि खोरि न लाई ?॥२॥
'हौं लहिहौं सुख राजमातु ह्वै, सुत सिर छत्र धरैगो ।'
कुल-कलंक मल-मूल मनोरथ तव बिनु कौन करैगो ? ॥३॥
ऐहैं राम, सुखी सब ह्वैहैं, ईस अजस मेरो हरिहैं ।
'तुलसिदास' मोको बड़ो सोच है तू जनम कौनि बिधि भरिहै ॥४॥

शब्दार्थ—कानन=वन। कैसे धौं=न जाने कैसे। दिनकर=सूर्य। विधि=ब्रह्मा। खोरि न लाई=दोष नहीं लगाया। मल-मूल=पापमूल। जनम भरिहै=दिन बितावेगी।

भावार्थ—(भरत अपनी माता कैकेयी को जली-कटी सुना रहे हैं) तूने इस प्रकार के कटुवचन कहे तो कैसे कहे कि 'हे राम! तुम वन जाओ'। इस प्रकार की बात कहते समय तेरा हृदय न जाने कैसा कठोर हो गया था, वह कैसे रह गया इसी में आश्चर्य है (विदीर्ण क्यों नहीं हो गया?) ॥१॥ मेरा जन्म सूर्य-वंश में हुआ है, दशरथ ऐसे पिता मिले हैं और राम-लक्ष्मण ऐसे भाई। पर हे जननी, तेरी ऐसी स्त्री मेरी जननी हुई! इसे देखकर क्या कहूँ? कुछ कहते नहीं बनता, यही बात ध्यान में आती है कि ब्रह्मा ने किसमें दोष नहीं लगा दिया (ऐसे उत्तम वंश और उत्तम लोगों के संसर्ग में रहकर भी तू सदोष रह गई) ॥२॥ तू अपने मन में जो यह बात सोच रही थी कि मैं राजमाता होने का सुख भोगूँगी और मेरा पुत्र सिर पर राजछत्र धारण करेगा, इस प्रकार का कुल में कलंक लगानेवाला (क्योंकि सूर्यवंश में बड़ा भाई ही सिंहासन का अधिकारी होता है) तथा पाप-मूलक मनोरथ तेरे अतिरिक्त और कौन कर सकता है? (कोई नहीं) ॥३॥ राम पुनः वन से लौटेंगे, सब लोग फिर उसी प्रकार सुखी होंगे, मेरा अपयश भी महादेवजी दूर कर देंगे (लोग समझ लेंगे कि इसमें भरत का कोई दोष नहीं था)। पर मुझे तो केवल इसी बात का बड़ा भारी सोच है कि तू अपनी जिंदगी किस प्रकार बितावेगी (सब लोग तुझी को दोषी ठहरावेंगे) ॥४॥

अलं०—विधि (२)।

---

(१६) भरत का आत्म-निवेदन

राग गौरी

जो पै हौं मातु-मते महँ ह्वैहौं।
तौ जननी! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं? ॥१॥

क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि ? कौन मानिहै साँची ? ।
महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिषनि बाँची ? ॥२॥
गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाहि जोइ सूझै ।
दीनबंधु कारुन्य-सिंधु बिनु कौन हिये की बूझै ? ॥३॥
'तुलसी' रामबियोग-बिषय-बिष-बिकल नारि-नर भारी ।
भरत-सनेह-सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी ॥४॥

शब्दार्थ—मते=सलाह । कालिमा=कालिख । सुचि=पवित्र । सपथनि=कसमें खाने से । सुकृती=पुण्यात्मा । बच=वचन । बिसिष=वाण । रसना=जीभ । बूझै=समझे । सनेह-सुधा=प्रेमरूपी अमृत । सुखारी=सुखी ।

भावार्थ—(भरतजी कौशल्या से कह रहे हैं) माता, यदि मैं (अपनी) माता (कैकेयी) के मत में (कहने में) होऊँगा (यदि राम के वन भेजने में मेरी भी सलाह रही होगी) तो मैं इस संसार में अपने मुख का कालिख कैसे धोऊँगा (तो फिर मेरा कलंक किसी प्रकार नहीं छूट सकेगा) ॥१॥ यदि मैं स्वयं अपनी पवित्रता के लिये कसमें भी खाऊँ, तो मैं उनसे किस प्रकार पवित्र (शुद्ध) हो सकता हूँ, मेरी बात को कौन सत्य मानेगा ? (कोई नहीं) । अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिये कसमें खाना भी व्यर्थ ही है, क्योंकि किसी पुण्यात्मा की महिमारूपी मृगी क्या दुष्टों के वचनरूपी बाणों से बची है ? (नहीं, अर्थात् दुष्ट लोग पुण्यात्माओं को भी अपने वचनों द्वारा कलंकित कर ही देते हैं, मेरी क्या बात !) ॥२॥ किसी की जीभ तो पकड़ी नहीं जा सकती (किसी को कुछ कहने से रोका तो जा नहीं सकता), इसलिये जिसे जो सूझे (जिसे जो मन में आवे) कहे (मुझे उसकी परवा नहीं), क्योंकि मेरे हृदय की बात दीनबंधु और करुणा के सिंधु (रामचंद्र) के अतिरिक्त और कौन समझ सकता है ? (कोई नहीं) । इसलिये और किसीसे कुछ कहना ही व्यर्थ है ॥३॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि राम-वियोग के विषम विष के कारण जो अयोध्या के स्त्री-पुरुष अत्यंत व्याकुल थे, वे भरत की स्नेह-सुधा से सिंचित होकर उस समय

सुखी हो गए (राम के वियोग का दुःख भरत की इन बातों के कारण दूर हो गया) ॥४॥

अलं०—रूपक () ४'२।

---

(२०) शुक-सारिका-संवाद

राग गौरी

सुक सों गहवर हिये कहै सारो।
बीर कीर ! सिय राम लषन बिनु लागत जग अँधियारो ॥१॥
पापिनि चेरि, अयानि रानि, नृप हित-अनहित न बिचारो।
कुलगुरु सचिव साधु सोचतु बिधि को न बसाइ उजारो ? ॥२॥
अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो।
सुने न बचन करुनाकर के जब पुर परिवार सँभारो ॥३॥
भैया भरत भावते के सँग बन सब लोग सिधारो।
हम पँख[1] पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो ॥४॥
सुनि खग कहत अंब ! मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।
गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम-गुन गारो ॥५॥
जीवन जग जानकी लखन को मरन महीप सँवारो।
'तुलसी' और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो ॥६॥

शब्दार्थ—सुक=(शुक) सुग्गा। गहवर हिये=गद्गद कंठ से। सारो=(शारिका) मैना। बीर=हे भाई। कीर=सुग्गा। चेरि=दासी (मंथरा)। अयानि=(अज्ञान) मूर्ख। हित-अनहित=भला-बुरा। कुलगुरु=वसिष्ठ। सचिव=मंत्री। सोचतु=सोचते। बिधि=ब्रह्मा। को न बसाइ उजारो=किसे बसाकर फिर नहीं उजाड़ दिया, किसे सुख देकर दुःख नहीं दिया। कोलाहल=शोर। सँभारो=समाधान किया, समझाया। भावते=प्रिय। पँख=पक्ष। तरसत=छटपटाते हैं। मौंगी रहि=चुप रह। गारो=निंदा। कहा चारो=क्या वश।

1. पाठां०—पर।

भावार्थ—(महलों में पाले हुए पक्षी आपस में बात कर रहे हैं) सुग्गे से गद्‌गद कंठ होकर मैना कहती है कि हे भाई शुक! सीता, राम और लक्ष्मण के बिना सारा संसार अंधकारमय जान पड़ता है (इन लोगों के बिना दुःख के कारण कहीं चित्त ही नहीं लगता) ॥१॥ उस पापिनी दासी (मंथरा), मूर्ख रानी (कैकेयी) और राजा (दशरथ) ने अपना कुछ भी भला-बुरा नहीं सोचा। कुलगुरु वसिष्ठ, मंत्री अथवा अन्य भले लोग ही इस बात को सोचते कि ब्रह्मा ने किसको बसाकर नहीं उजाड़ा? (इन्हीं लोगों को दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए था) ॥२॥ जिस समय रामचंद्र वन को जाने लगे उस समय नेत्रों में जल भर आने के कारण उन्हें भली भाँति देख भी न सके। नगर में जो भारी शोर-गुल हो रहा था उसके कारण हम उनके वचन भी न सुन सके कि उन्होंने पुर और परिवार के लोगों का किस प्रकार समाधान किया ॥३॥ प्रिय भाई भरत के साथ सब लोग वन को गए हैं, पर हम लोगों के पंख भी काम न आए। पंखों के रहते भी हम लोग पींजड़ों में पड़े-पड़े वहाँ जाने के लिये छटपटा रहे हैं। इससे हमी लोगों का अभाग्य सबसे बढ़कर है ॥४॥ मैना की ये बातें सुनकर सुग्गा बोला कि हे माता, प्रेम के मार्ग को सबसे न्यारा मार्ग समझकर चुप रहो (प्रेम के मार्ग में सब कुछ सहना ही पड़ता है)। जो लोग रामचंद्र के साथ गए थे वे भी उन्हें पहुँचाकर देखो कर्म (भाग्य) के गुण की निंदा करते हुए लौट ही आए (तो फिर हम गए भी होते तो क्या, हमें भी लौट ही आना पड़ता) ॥५॥ इस संसार में सीता और लक्ष्मण का ही जीना जीना है (क्योंकि वे राम के साथ गए हैं) और राजा (दशरथ) ने भी मरकर अपने मरण को सँवार लिया (राम के वियोग में मरना भी उत्तम था)। तुलसीदासजी कहते हैं कि और लोग तो केवल प्रीति की चर्चा ही करके संतोष करते हैं क्योंकि उनका कोई वश ही नहीं चलता (न राम के साथ ही जा सके और न मरकर ही प्रेम निबाहा) ॥६॥

अलं०—विशेषोक्ति (४), भेदकातिशयोक्ति (५), अनुपलब्धि प्रमाण (६), लेश (मरन सँवारो)।

(२१) भरत-विनय

राग केदारा

जानत हौ सब ही के मन की ।
तदपि कृपालु करौं विनती सोइ सादर, सुनहु दीन-हित जन की ॥१॥
ए सेवक संतत अनन्य अति ज्यों चातकहि एक गति घन की ।
यह विचारि गवनहु पुनीत पुर, हरहु दुसह आरति परिजन की ॥२॥
मेरो जीवन जानिय ऐसोइ जियै जैसो अहि जासु गई मनि फन की ।
मेटहु कुलकलंक कोसलपति आज्ञा देहु नाथ मोहिं वन की ॥३॥
मोकों जोइ लाइय लागै सोइ, उतपति है कुमातु तें तन की ।
'तुलसिदास' सब दोष दूरि करि प्रभु अब लाज करहु निज पन की ॥४॥

शब्दार्थ—दीन-हित=दीनदयालु । जन=दास, भक्त । गति=भरोसा । घन=बादल । पुनीत=पवित्र । आरति=दुःख । अहि=सर्प । लाइय=लगाया जाय । पन=(प्रण) बाना ।

भावार्थ—(भरतजी वन में रामजी से लौटने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं) हे नाथ, आप सबके मन की बात जानते हैं । फिर भी हे कृपालु, आपसे मैं आदरपूर्वक यही विनय करता हूँ कि आप दीनदयालु हैं इसलिये दास की बात अवश्य सुनिए (मानिए) ॥१॥ यह सेवक आपके प्रेम के विषय में सदा उसी प्रकार अनन्य है जिस प्रकार चातक को केवल एक बादल को ही भरोसा रहता है । यह बात मन में सोचकर पवित्र पुर (अयोध्या) को लौट चलें और परिवार के लोगों का दुःसह दुःख दूर करें ॥२॥ आप यह भली भाँति समझ लें कि मेरा जीवन ठीक उसी प्रकार का है, जैसे फन से मणि के चले जाने पर कोई सर्प जीता है । हे कोसलपति, अब आप कुल का कलंक मिटाइए (रघुवंश में जिस प्रकार की बात कभी नहीं हुई थी, वह आज हुई । आपके लौट चलने से यह कलंक दूर हो जायगा) । हे नाथ, मुझे अब आप वन जाने की आज्ञा दें (क्योंकि राजकार्य चलाना बड़े भाई का ही कार्य है) ॥३॥ मुझे जो कुछ दोष लगाय

आय लग सकता है, क्योंकि मेरे इस शरीर की उत्पत्ति ही बुरी माता से हुई है। (तुलसीदास कहते हैं कि) हे प्रभो, मेरे वे सब दोष दूर कीजिए (आपके लौटने और मेरे वन जाने से ही मुझे कोई लांछन नहीं लग सकेगा) अब आप अपने बाने की लज्जा रखिए (क्योंकि आपका प्रण शरणागत का पालन है, इसलिये मेरी बात मानकर मुझे वन जाने देकर दोष-मुक्त होने दीजिए और आप अयोध्या लौट जाइए) ॥४॥

अलं०—उदाहरण (२, ३), काव्यलिंग (४)।

---

(२२) राम का उत्तर

राग केदारा

तात ! बिचारो धौं हौं क्यों आवौं।
तुम्ह सुचि सुहृद सुजान सकल बिधि, बहुत कहा कहि-कहि समुझावौं ॥१॥
निज कर खाल खैंचि या तनु तें जौ पितु पग पानहीं करावौं।
होउँ न उऋन पिता दसरथ तें, कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं ॥२॥
'तुलसिदास' जाको सुजस तिहूँ पुर क्यों तेहि कुलहि कालिमा लावौं।
प्रभु-रुख निरखि निरास भरत भए, जान्यो है सबहि भाँति बिधि बावौं ॥३॥

शब्दार्थ—तात=प्रिय (भाई)। बिचारो धौं=विचारो तो। हौं=मैं। सुचि=पवित्र, शुद्ध। सुहृद=सुंदर हृदयवाले। सुजान=चतुर। बिधि=प्रकार। कर=हाथ। पानहीं=जूती। उऋन=ऋण-मुक्त। मेटि=अस्वीकार करके। पति=प्रतिष्ठा। रुख=भाव। बावौं=(बाम) प्रतिकूल।

भावार्थ—(रामचंद्र भरत को उत्तर दे रहे हैं) हे तात, तुम्हीं विचारो कि मैं इस वन में किसलिये आया हूँ ? तुम सब प्रकार से बड़े शुद्ध मन के, सुहृद और चतुर हो। इसलिये बारंबार कह-कहकर मैं तुम्हें क्या समझाऊँ ? (तुम स्वयं ही सोच लो) ॥१॥ यदि मैं अपने ही हाथ से अपने शरीर की खाल निकालकर अपने पिता के पैरों के लिये जूतियाँ बनवाऊँ तो भी मैं पिता दशरथ से ऋण-

मुक्त नहीं हो सकता (ऐसे पिता के वचनों का यदि मैं अनादर करूँ तो फिर संसार में मुझे प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती, इसलिये मेरा वन जाना ठीक है) ॥२॥ (तुलसीदास कहते हैं कि) जिस व्यक्ति का सुयश तीनों लोकों में छाया हुआ है उस (दशरथ) के कुल में मैं कैसे कलंक लगाऊँ ? (दशरथजी सत्यसंध प्रसिद्ध थे, अब मुझे भी उनकी बातों की सत्यता प्रमाणित करना आवश्यक है)। रामचंद्रजी का यह रुख (भाव) देखकर भरतजी एकदम निराश हो गए। उन्होंने समझ लिया कि ब्रह्मा सभी प्रकार से टेढ़ा है (अर्थात् रामजी भी लौटने को तैयार नहीं हैं) ॥३॥

अरण्यकांड

(२३) मारीच-वध

राग सोरठ

रघुवर दूरि जाइ मृग मार्‍यो ।
लखन पुकारि, राम हरुए कहि मरतहुँ वैर सँभार्‍यो ॥१॥
सुनहु तात ! कोउ तुम्हहिं पुकारत प्राननाथ की नाईं ।
कह्यो लषन हत्यो हरिन, कोपि सिय हठि पठयो बरिआईं ॥२॥
बंधु बिलोकि कहत 'तुलसी' प्रभु 'भाई ! भली न कीन्हीं ।
मेरे जान जानकी काहू खल छल करि हरि लीन्हीं' ॥३॥

शब्दार्थ—हरुए=धीरे से। वैर सँभार्‍यो=वैर की रक्षा की (अपने शत्रु के प्रति जो व्यवहार करना चाहिए वही किया)। प्राननाथ=पति (रामचंद्र)। नाईं=(सं० न्याय) तरह। हत्यौ=मारा। हठि=हठपूर्वक। पठ्यो=भेजा। बरिआईं=जबरन्, बरबस। बंधु=भाई। प्रभु=राम। मेरे जान=मुझे जान पड़ता है।

भावार्थ—(यह पंचवटी का वर्णन है) रामचंद्रजी ने दूर जाकर

हरिण (कपट-मृग मारीच) को मारा। मरते समय उस (हरिण-रूप मारीच) ने पहले लक्ष्मण का नाम लिया, फिर धीरे से राम कहा (मरते समय मुक्ति के लिये लक्ष्मण और राम का नाम लेना था; पर जोर से लक्ष्मण कहकर कुटी में रहनेवाली सीता के मन में भ्रम उत्पन्न कर दिया)। इस प्रकार उसने मरते समय भी अपने वैर को सँभाला। (उस ध्वनि को सुनकर सीता लक्ष्मण से कहती हैं) हे तात ! प्राणनाथ की भाँति कोई तुम्हें पुकार रहा है (तुम शीघ्र जाओ)। तब लक्ष्मण ने कहा कि प्रभु ने हरिण को मारा है उसी की ध्वनि है (कोई मुझे पुकार नहीं रहा है)। तब सीताजी ने क्रोध करके हठपूर्वक लक्ष्मण को बर-बस भेजा ॥२॥ लक्ष्मणजी को आता देखकर रामचंद्र ने उनसे कहा कि भाई ! तुमने यह अच्छा नहीं किया। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि किसी दुष्ट ने छल करके तुम्हें तो इधर भेजवा दिया और स्वयं सीता को हर ले गया ॥३॥

---

(२४) सीता-हरण

राग सोरठ

आरत वचन कहति वैदेही।
बिलपति भूरि बिसूरि 'दूरि गए मृग-सँग परम-सनेही ॥१॥
कहे कटु वचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजै।
देखि बधिक-बस राज-मरालिनि लषनलाल छिनि लीजै' ॥२॥
बनदेवनि सिय कहन कहति यों छल करि नीच हरी हौं।
गोमर-कर सुरधेनु, नाथ ! ज्यौं त्यौं पर-हाथ परी हौं ॥३॥
'तुलसिदास' रघुनाथ-नाम-धुनि अकनि गीध धुकि धायो।
'पुत्रि पुत्रि ! जनि डरहि, न जैहै नीचु ? मीचु हौं आयो' ॥४॥

शब्दार्थ—आरत=दुःखपूर्ण। भूरि=बहुत। बिसूरि=स्मरण करके। गोमर=गोघाती, कसाई। सुरधेनु=कामधेनु। पर-हाथ=दूसरे के हाथ में। अकनि=सुनकर। गीध=(गृद्ध) जटायु। धुकि धायो=तेजी से दौड़ा। मीचु=मृत्यु।

भावार्थ—(सीता को रावण हरण करके लिए जा रहा है, उस समय) सीता दुःखपूर्ण वचन कहती हैं। वे इस बात को स्मरण करके अत्यंत विलाप करती हैं कि मेरे परम स्नेही (पति रामचंद्र) मृग के साथ बहुत दूर निकल गए (इसीसे मेरा चिल्लाना उन्हें नहीं सुनाई पड़ता, नहीं तो अब तक वे आ गए होते) ॥१॥ हे लखनलाल, मैंने तुम्हें जो कठोर वचन कहे और तुम्हारे मना करने पर भी जो रेखा का उल्लंघन किया, उसे क्षमा करना। इस समय वधिक के वश में पड़ी हुई राजहंसिनी की भाँति समझकर अब आकर मुझे छीन ले जाओ ॥२॥ सीता वनदेवताओं से यह सहेजकर कहने को कहती हैं (कि उन लोगों के आने पर यह कह देना—) 'नीच ने मुझे छल करके उसी प्रकार हरण कर लिया है, जिस प्रकार कसाई के हाथ में कामधेनु पड़ जाय। हे नाथ! (भाग्य-दोष से) मैं पराए के हाथ में पड़ गई हूँ ॥३॥ तुलसीदास जी कहते हैं कि सीता की आवाज सुनकर गृद्ध जटायु बड़ी तेजी के साथ दौड़ा। और बोला कि बेटी डरो मत। (रावण से) क्यों रे नीच नहीं जायगा? तेरे लिये मृत्यु रूप मैं आ पहुँचा (मैं तुझे मारकर सीताको छुड़ा लूँगा) ॥४॥

अलं०—दृष्टांत (२), उदाहरण (३), रूपक (मीचु हौं)।

---

(२५) शवरी-मिलाप

राग सूहो

सबरी सोइ उठी, फरकत बाम बिलोचन बाहु।
सगुन सुहावने सूचत मुनि-मन-अगम उछाहु ॥
मुनि-अगम उर आनंद, लोचन सजल, तनु पुलकावली।
तृन-पर्नसाल बनाइ, जल भरि कलस, फल चाहन चली ॥
मंजुल मनोरथ करति, सुमिरति बिप्रबर-बानी भली।
ज्यों कलप-बेलि सकेलि सुकृत सुफूल-फूली सुख-फली ॥१॥
प्रानप्रिय पाहुने ऐहैं राम-लषन मेरे आजु।
जानत जन-जिय की मृदुचित राम गरीबनिवाजु ॥

मृदुचित गरीबनिवाजु आजु विराजिहैं गृह आइकै।
ब्रह्मादि संकर गौरि पूजित पूजिहौं अब जाइकै॥
लहि नाथ हौं, रघुनाथ-बानो पतितपावन पाइकै।
दुहुँ ओर लाहु अघाइ 'तुलसी' तीसरेहु गुन गाइकै॥२॥

दोना रुचिर रचे पूरन कंद मूल फल फूल।
अनुपम अमियहु तें अंबक अवलोकत अनुकूल॥
अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंभ हित सब आनिकै।
सुंदर सनेह-सुधा सहस जनु सरस राखे सानिकै॥
छन भवन, छन बाहर बिलोकति पंथ भ्रू पर पानि कै।
दोउ भाइ आए सबरिका के प्रेम-पन पहचानिकै॥३॥

स्रवन सुनत चली आवत, देखि लषन-रघुराउ।
सिथिल सनेह कहै, 'है सपना विधि कैधौं सति भाउ'॥
सति भाउ कै सपनो ? निहारि कुमार कोसलराय के।
गहे चरन जे अघहरन नत-जन-बचन-मानस-काय के॥
लघु-भाग-भाजन उदधि उमगे लाभ सुख चित चाय के।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भाय के॥४॥

प्रेम-पट पाँवड़े देत सुअरघ बिलोचन-बारि।
आस्रम लै दिए आसन पंकज-पाँय पखारि॥
पद-पंकजात पखारि पूजे पंथ-स्रम बिरहित भए।
फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नए॥
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जए।
फल चारिहू फल चारि दहि परचारि फल सबरी दए॥५॥

---

१. उमग्यो। २. देत।

सुमन बरषि हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि-माँगि प्रभु खात!
प्रभु खात माँगत, देति सवरी राम भोगी जाग के।
पुलकत प्रसंसत सिद्ध सिव सनकादि भाजन भाग के॥
बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के।
सुनु समुझि 'तुलसी' जानु रामहिं बस अमल अनुराग के॥६॥

रघुबर अँचइ उठे सवरी करि प्रनाम कर जोरि।
हौं बलि-बलि गई पुरई मंजु मनोरथ मोरि॥
पुरई मनोरथ स्वारथहु परमारथहु पूरन करी।
अघ अवगुनन्हि की कोठरी करि कृपा मुद-मंगल भरी॥
तापस किराितिनि कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी।
सिर नाइ आयसु पाइ गवने परम निधि पाले परी॥७॥

सिय-सुधि सब कही नख-सिख-निरखि-निरखि दोउ भाइ।
दै-दै प्रदच्छिना करति प्रनाम न प्रेम अघाइ॥
अति प्रीति मानस राखि रामहि, राम-धामहिं सो गई।
तेहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जलअंजलि दई॥
'तुलसी'-भनित सवरी-प्रनति, रघुबर-प्रकृति करुनामई।
गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होय प्रभुपद नित नई॥८॥

शब्दार्थ—बाम=बायाँ। सुहावने=सुंदर। मुनि-मन-अगम=जो मुनियों के मन के लिये भी अगम्य हो। उछाहु=उत्साह। पुलकावली=रोमांच। तृन-पर्नसाल=झोपड़ी। कलस=घड़ा। चाहन=देखने। मनोरथ=अभिलाषा। विप्र-बर-बानी=मतंग ऋषि ने शबरी से कहा था कि भगवान् राम तुझे दर्शन देंगे। कल्प-बेलि=कल्पवृक्ष। सकेलि=बटोरकर। सुकृत=पुण्य। जन=दास। गरीबनिवाजु=दीनदयालु। लाहु=लाभ। अघाइ=भली भाँति। अंबक=नेत्र।

डिंभ=बच्चा। हित=लिये। भ्रू=भौंह। पानि=हाथ। सबरिका=शबरी। सति भाउ=सचमुच। अघहरन=पाप हरनेवाले। काम=कर्म। भाग-भाजन=भाग्य रूपी बर्तन। उदधि=समुद्र। भाय=भाव। पाँवड़े=पैर-पोछना, पायंदाज। बारि=जल (आँसू)। पखारि=धोकर। पंकजात=कमल। स्रम=थकावट। बिर-हित=हीन, रहित। जए=उत्पन्न किए। फल चारहू=चारोफल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष)। दहि=जलाकर। परचारि=ललकारकर। सिहात=लालायित होते हैं। रुचि=प्रेम। छुधा=भूख। भोगी=खानेवाले। जाग=यज्ञ। भाजन भाग के=भाग्य के भाजन, भाग्यशाली। अँचइ=हाथ धोकर। पुरई=पूर्ण की। पर-मारथ=परलोक की साधना। परम निधि=भारी खजाना। पाले परी=हाथ लगी। भनित=कहा हुआ, वाणी। प्रनति=वंदना, पूजा, अर्चा।

भावार्थ—(राम अब पंचवटी से आगे जा रहे हैं) आज शबरी जब से सोकर उठी है उसका बायाँ नेत्र और भुजाएँ फड़क रही हैं। यह सुंदर सगुन देख-कर (इसके सूचित होने पर) शबरी के हृदय में इतना अधिक उत्साह हुआ जो मुनियों के मन के लिये भी अगम्य है (अर्थात् उसका आनंद बहुत अधिक था)। ऐसा आनंद होने पर उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए और शरीर में रोमांच हो आया तब वह अपनी झोपड़ी को सँवारकर (उसे साफ करके), घड़े में जल भरकर फल देखने के लिये (फलों को देख-देखकर ले आने के लिये) चली। मार्ग में जाते समय वह (अनेक प्रकार की) सुंदर अभिलाषाएँ करती जाती थी और ब्राह्मण (मतंग ऋषि) की कही हुई सुंदर बात को स्मरण करती जा रही थी। उसकी दशा ऐसी ही थी जैसे उसने अपने पुण्यों को बटोरकर पहले उसके द्वारा कल्पलता को भली भाँति पुष्पित किया हो और अब वह लता सुखरूपी फल फल रही हो (शबरी को अपने पुण्य के कारण ही रामदर्शन हो रहा था)॥१॥

(शबरी सोच रही है) आज मेरे यहाँ प्राण के समान प्रिय अतिथि राम और लक्ष्मण आवेंगे। राम दीनदयालु और कोमल चित्तवाले हैं। वे दास के हृदय की बात भली भाँति समझते हैं। वे ही राम आज मेरे घर में आकर विराजेंगे और मैं अब (यहाँ से फल लेकर लौटने पर) जाकर ब्रह्मादि, शंकर और पार्वती द्वारा पूजित चरणों की पूजा करूँगी। मुझे तो (राम से) स्वामी मिल जायँगे और

रामजी का बाना है पतितों को पवित्र करना। इस प्रकार दोनों ओर से भरपूर लाभ है (अर्थात् राम ऐसा मुझे पतित-पावन न मिलेगा और राम को मुझ-सी पतिता नहीं मिलेगी—इससे दोनों को पूर्ण लाभ है)। तुलसीदास कहते हैं कि हमारे ऐसे तीसरे व्यक्ति को भी पूर्ण लाभ है कि हम उनका गुण गाकर उसी बात को प्राप्त कर लेंगे ॥२॥

शबरी ने कंद, मूल, फल और फूल से परिपूर्ण सुंदर दोने सजाए। वे सब अमृत से भी अद्वितीय (उससे भी बढ़कर) हैं और साथ ही आँखों द्वारा देखने पर रुचिकर प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार माता अपने बच्चे के लिये भोजन की सामग्री जुटाती है उसी प्रकार शबरी ने वे सब वस्तुएँ एकत्र की थीं। वे वस्तुएँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो सुंदर स्नेह से जो अमृत से हजारों गुना बढ़कर है, सानकर उन्हें रखा हो। उन फलों के देखने से शबरी का अत्यंत प्रेम-भाव लक्षित होता था। (सब सामग्री एकत्र करने के बाद वह उनकी प्रतीक्षा करने लगी। क्षणभर वह झोपड़ी के भीतर रहती, तो क्षणभर के बाद ही बाहर आकर भौंहों के ऊपर हाथ रखकर मार्ग देखने लगती (कि राम-लक्ष्मण आ रहे हैं या नहीं ?)। शबरी के इस प्रेम-भाव को पहचानकर दोनों भाई उसके यहाँ गए ॥ ३ ॥

लक्ष्मण और राम आते हैं यह बात सुनते ही वह चली और उन्हें देखकर स्नेह के कारण शिथिल हो गई तथा कहने लगी—'यह स्वप्न है अथवा सचमुच ही ऐसी बात है ?'। कोसलराय दशरथ के पुत्रों को देखकर वह यही विचार कर रही है। उसने उनके चरणों को स्पर्श किया। वे चरण ऐसे हैं जो वचन, मन और कर्म से शरणागत होनेवाले के अघ को हरनेवाले हैं। उस समय लाभ, सुख और चाव के जो समुद्र लहराने लगे उनके लिये भाग्यरूपी बर्तन बहुत ही छोटा था (यह अत्यंत सौभाग्य था कि राम का दर्शन हो)। रामजी ने भाई सहित शबरी का माता की भाँति आदर किया। क्योंकि राम तो प्रेम-भाव के भूखे हैं (फल आदि के नहीं, जो प्रेम-भाव दिखाता है उसका वे संमान करते हैं, उसपर कृपा करते हैं) ॥४॥

शबरी ने राम के लिये प्रेम रूपी-वस्त्र ही पाँवड़े के रूप में बिछाया था और

नेत्रों के जल (प्रेमाश्रु) से ही उसने उन्हें सुंदर अर्घ दिया था। आश्रम में ले जाकर उसने उनके चरण-कमलों को धोया और उन्हें बैठने के लिये आसन दिए। पैर धोने के बाद वे लोग मार्ग की थकावट से रहित हुए (उनकी थकावट दूर हुई)। फिर शबरी ने फल-फूल, अंकुर एवं मूल नये दोनों में भली भाँति सुधार कर रखा। राम उसे पुलकित होकर खाने लगे। खाते समय वे स्वाद की बड़ाई करते हैं। उनका इस प्रकार प्रशंसा करना ऐसा जान पड़ता है, मानो उसके प्रति आदर उत्पन्न कर रहे हैं। शबरी ने उन्हें जो चार प्रकार के फल दिए थे— फल, फूल, अंकुर, मूल, उनके द्वारा चारो फलों (अर्थ आदि) को जलाकर उन्होंने ललकारकर शबरी को फल दिए (अर्थात् उन्होंने उसके बदले में शबरी को जो फल दिया वह उन चारों फलों से उत्तम था) ॥५॥

देवता लोग पुष्प-वर्षा करके हर्षित हुए, मुनि लोग प्रसन्न होकर सराहना करने लगे और लालायित होने लगे (कि हमें ऐसा सुअवसर नहीं मिला)। उस समय न जाने किस क्षुधा से और किस प्रेम से राम भाई-सहित माँग-माँग-कर फलों को खा रहे थे। यज्ञ-भाग का भोग करनेवाले राम शबरी से माँगकर खा रहे हैं। सिद्ध, शिव और सनकादि पुलकित होकर शबरी के भाग्यरूपी भाजन की प्रशंसा करते हैं। सुमित्रा और कौशल्या (ऐसी महारानियों) के राजकुमार फल और शाक के अतिथि हैं (इन साधारण वस्तुओं को खा रहे हैं)। तुलसी कहते हैं कि इन बातों को सुनकर और समझकर राम को निर्मल प्रेम के वश समझना चाहिए ॥६॥

राम जब हाथ-मुँह धोकर उठे तब शबरी हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करने लगी। मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ, आपने मेरी सुंदर अभिलाषा पूर्ण कर दी। अभिलाषा तो पूर्ण हुई ही साथ ही स्वार्थ और परमार्थ दोनों सध गए (इह लोक और परलोक दोनों की साधना हो गई)। पाप और अवगुणों की कोठरी (मुझ जैसी पापिनी और दुर्गुणी) को आपने हर्ष और मंगल से भर दिया (मुझे आनंदित किया)। शबरी के यहाँ जो अन्य तपस्वी, किरातिनियाँ और कोल आदि आए थे वे इन दोनों भाइयों की सुकुमार मूर्ति मन में धारणकर, सिर

नवाकर और आज्ञा पाकर अपने-अपने घर गए। इन लोगों के पल्ले बड़ा भारी खजाना ही लग गया (राम का दुर्लभ दर्शन मिला) ॥७॥

शवरी ने नख से शिखा पर्यंत दोनों भाइयों को भलीभाँति देखा और उन्हें सीता का पता बताया। वह प्रदक्षिणा करकर उन्हें प्रणाम करती है। प्रेम के कारण उसे संतोष ही नहीं होता। अंत में वह अत्यंत प्रेम के साथ राम को मन में रखकर राम के धाम (स्वर्ग—साकेत लोक) को गई। उसके दिवंगत हो जाने पर राम ने उसे माता की भाँति अपने ही हाथ से जलांजलि दी (उसका तर्पण किया)। तुलसीदास कहते हैं कि मेरी वर्णित यह शवरी की वंदना और राम की करुणायुक्त प्रकृति की कथा गाने से, सुनने से और समझने से हृदय में नित्य-प्रति राम के चरणों में नवीन भक्ति का उदय होता है ॥८॥

अलं०—उपमा (अंब ज्यों, जननि ज्यों आदि), उत्प्रेक्षा (३/६, ५/८) रूपक (१, ४, ५, ७/८), विभावना तीसरी (५/६), भेदकातिशयोक्ति (केहि रुचि, केहि छुधा), विषम (६/८), क्रम (६/६)।

सुंदरकांड

(२६) हनुमान का लंका-गमन

राग केदारा

रजायसु राम को जब पायो।
गाल मेलि मुद्रिका मुदित मन पवनपूत सिर नायो ॥१॥
भालुनाथ नल नील साथ चले, बली बालि को जायो।
फरकि सुअँग भए सगुन, कहत मानो मग मुद-मंगल छायो ॥२॥
देखि बिवर सुधि पाइ गीध सों सबनि अपनो बलु मायो।
सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक-सो आयो ॥३॥

खोजत घर-घर जनु दरिद्र-मनु फिरत लागि धनु धायो ।
'तुलसी' सिय बिलोकि पुलक्यो तनु भूरिभाग भयो भायो ॥४॥

शब्दार्थ—रजायसु=आज्ञा । मेलि=डालकर । भालुनाथ=जांबवान् । बालि को जायो=बालि का पुत्र, अंगद । सुभग=दाहिने अंग । मग=मार्ग । गीध= संपाती । मायो=अंदाज किया । तरकि=अनुमान करके । तोयनिधि=समुद्र । लूक=उल्का । लागि=लिए, वास्ते । भायो=इच्छित ।

भावार्थ—जब रामजी ने हनुमान को लंका जाने के लिये आज्ञा दे दी तो उन्होंने (राम की दी हुई) अँगूठी को मुख में डाल लिया और प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम किया ॥१॥ उनके साथ में ऋक्षराज जांबवान और नल-नील एवं बालि के पुत्र अंगद भी चले । उनके शुभ अंग फड़कने लगे, सुंदर सगुन हुआ । यह (अंगों का फड़कना) बतला रहा है कि मार्ग में आनंद और मंगल छाया रहेगा (मार्ग में कोई अनिष्ट न होगा) ॥२॥ (सबसे पहले प्यास लगने पर वे लोग एक विवर में गए, जहाँ स्वयंप्रभा नाम की स्त्री से भेंट हुई । उस) विवर को देखकर (वे लोग समुद्र-तट पर पहुँचे जहाँ) संपाती से भेंट हुई । उन्हें संपाती के द्वारा सीताजी का पता चला । (संपाती के यह बतलाने पर कि समुद्र पार करने पर सीताजी का समाचार मिलेगा) सबने अपने बल का अंदाज लगाया । अंत में हनुमानजी ने राम का स्मरण किया और समुद्र को देखकर उसके विस्तार का अनुमान लगाया और फिर उल्का की भाँति उछलकर लंका में जा पहुँचे ॥३॥ वे प्रत्येक घर में सीता को खोजने लगे, मानो दरिद्र का मन धन के लिये घर-घर दौड़ता हो (हनुमान ने बड़े ध्यान से-मनोयोग से सीता की खोज की) । तुलसीदासजी कहते हैं कि सीताजी को देखकर उनके शरीर में रोमांच हो आया । उन्होंने अपने मन में अपने को भाग्यशाली माना, क्योंकि मनचाहा कार्य हो गया ॥ ४ ॥

अलं०—उत्प्रेक्षा (२,४), उपमा (लूक-सो) ।

———

(२७) मुद्रिका-दान

राग केदारा

देखी जानकी जब जाइ।
परम धीर समीरसुत के प्रेम उर न समाइ ॥१॥
कृस सरीर सुभाय सोभित, लगी उड़ि-उड़ि धूलि।
मनहुँ मनसिज मोहनी-मनि गयो भोरे भूलि ॥२॥
रटति निसि-बासर निरंतर राम राजिवनैन।
जात निकट न बिरहिनी-अरि अकनि ताते बैन ॥३॥
नाथ के गुनगाथ कहि कपि दई मुँदरी डारि।
कथा सुनि उठि लई कर-बर रुचिर नाम निहारि ॥४॥
हृदय हरष बिषाद अति पति-मुद्रिका पहिचानि।
'दास तुलसी' दसा सो केहि भाँति कहै बखानि ? ॥५॥

शब्दार्थ—समीरसुत=हनुमान। कृस=दुर्बल। मनसिज=कामदेव। भोरे=भ्रम से, गलती से। राजिव=कमल (लाल)। बिरहिनी-अरि=विरहिणियों के शत्रु (शीतल, मंद, सुगंधित वायु आदि)। अकनि=सुनकर। नाथ=राम। कर-बर=श्रेष्ठ हाथ में।

भावार्थ—जब परमधीर हनुमान ने जाकर सीता को देखा, तो उनके हृदय में प्रेम अँटता ही नहीं था (उन्हें सीताजी के देखने से बहुत अधिक प्रेम उत्पन्न हुआ) ॥ १ ॥ दुर्बल शरीर पर उड़-उड़कर जो धूल पड़ी थी वह स्वभावतः शोभित जान पड़ती थी। ऐसा जान पड़ता था कि कामदेव धोखे में अपनी मोहिनी मणि भूलकर छोड़ गया है (वह धूल लोगों को अपनी ओर अत्यधिक आकृष्ट करती थी) ॥२॥ वे कमल-नेत्र राम का नाम रातो-दिन बराबर जपा करती थीं। उनके गर्म शब्दों को सुनकर विरहिणियों के शत्रु (जो पदार्थ वियोगावस्था में दुःखदायी होते हैं वे) उनके निकट नहीं जाते थे (उनके मुख से विरह के कारण जो गर्म साँसें निकला करती थीं, उनसे उनके वे शत्रु डर जाते

थे कि कहीं झुलस न जायँ, अर्थात् उन्हें वियोगावस्था में अत्यंत क्लेश था)॥३॥ रामजी के गुणों की कथा कहकर हनुमान ने मुद्रिका गिरा दी। कथा सुनकर उन्होंने उठकर उस मुंद्रिका को अपने सुंदर हाथ में ले लिया। उन्होंने उस मुद्रिका पर सुंदर नाम देखा ॥ ४ ॥ अपने पति राम का नाम देखते ही उनके हृदय में अत्यंत हर्ष और विषाद दोनों साथ ही हुए (हर्ष इस बात से कि रामजी को मेरा समाचार मिल गया। विषाद इस बात का कि कहीं रावण ने राम को जीत तो नहीं लिया आदि)। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनकी उस दशा का वर्णन मैं किस प्रकार लिखूँ ? (उसका निरूपण करना कठिन है) ॥ ५ ॥

अलं०—उत्प्रेक्षा (२), अत्युक्ति (विरह की—३ में)।

---

(२८) सीता-सांत्वना

राग केदारा

हौं रघुवंसमनि को दूत।
मातु मानु प्रतीति जानकि ! जानि मारुतपूत ॥१॥
मैं सुनीं बातैं असैली जे कहीं निसिचर नीच।
क्यों न मारैं गाल बैठो काल-डाढ़नि बीच ॥२॥
निदरि अरि रघुबीर-बल लै जाउँ जौ हठि आज।
डरौं आयसु-भंग तें, अरु बिगरिहै सुरकाज ॥३॥
बाँधि बारिधि, साधि रिपु दिन चारि में दोउ बीर।
मिलहिंगे कपि-भालु-दल सँग, जननि उर धरु धीर ॥४॥
चित्रकूट-कथा कुसल कहि सीस नायो कीस।
सुहृद सेवक नाथ को लखि दई अचल असीस ॥५॥
भए सीतल स्रवन तन मन सुने बचन-पीयूष।
'दास तुलसी' रही नयननि दरस ही की भूख ॥६॥

शब्दार्थ—प्रतीति=विश्वास । मारुतपूत=पवन का पुत्र । असैली=शैली के विरुद्ध, लोक-मर्यादा के विरुद्ध । गाल मारना=अभिमान करना, बढ़-बढ़कर बातें करना । काल-डाढ़=काल के मुख में । हठि=जबर्दस्ती करके । साधि-रिपु=शत्रु को साधकर (शत्रु पर आक्रमण करने का अवसर तजवीज कर) । दिन चारि में=कुछ ही दिनों में । कीस=बंदर ।

भावार्थ—(हनुमानजी सीताजी से कह रहे हैं कि मेरे ऊपर अविश्वास न करो, मुझे शत्रु के पक्ष का मत समझो) हे माता जानकी, मैं रघुवंशियों में श्रेष्ठ (रामचंद्रजी) का दूत हूँ । मेरी बातों पर विश्वास करो, मैं पवन का पुत्र हनुमान हूँ ॥१॥ उस नीच निशाचर ने (रावण ने–जो अभी यहाँ आया था) जो लोक-मर्यादा के विरुद्ध बातें कही हैं, उन्हें मैंने सुना है । वह जो इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें कर रहा है वह ठीक ही है, क्योंकि वह काल के डाढ़ों के बीच बैठा है न ! (उसकी मृत्यु बहुत शीघ्र होनेवाली है) ॥ २ ॥ यदि रामचंद्र के बल से (अपने बल से नहीं—उनके भरोसे) शत्रु का निरादर करके तुम्हें आज ही हठपूर्वक ले जाऊ तो उचित नहीं होता । क्योंकि मैं आज्ञा-भंग से डरता हूँ (रामजी ने मुझे केवल समाचार लाने की आज्ञा दी है, आपको लाने की नहीं) और साथ ही देवताओं का कार्य बिगड़ने की भी आशंका है (क्योंकि फिर वह पातकी मारा नहीं जायगा और देवता फिर कष्ट पाने लगेंगे) ॥ ३ ॥ दोनों भाई समुद्र बाँधकर और शत्रु को साधकर बहुत शीघ्र ही आवेंगे । वे वानरों और भालुओं की सेना-सहित आकर आपसे मिलेंगे । हे जननी, हृदय में धैर्य धारण करो ॥ ४ ॥ हनुमानजी ने (सीताजी के विश्वास के लिये उन्हें) चित्रकूट की कथा (जयंत के चोंच मारने और उसकी आँख के फूटने की कथा) सुनाई । कथा सुनाकर उन्होंने सिर झुकाकर प्रणाम किया । सीता ने उन्हें अपने पति का सुहृद (हितैषी) और सेवक जानकर उन्हें अचल आशीर्वाद दिया (ऐसा आशीर्वाद जो कभी बदल न सके) ॥५॥ इस वचनामृत के सुनने पर हनुमान के कान शीतल हो गए, सारा शरीर और मन भी शीतल हुआ (उनके हृदय में पूर्ण संतोष हुआ) । तुलसीदासजी

कहते हैं कि केवल नेत्रों में दर्शनों की भूख रह गई (क्योंकि वे सीताजी को भली भाँति देख नहीं सके, वे उनसे भी पर्दा कर रही थीं) ॥६॥

अलं०—लोकोक्ति, रूपक (बचन-पियूष) ।

---

(२६) सीता का क्लेश-कथन

राग केदारा

तात ! तोहूँ सों कहत होति हिये गलानि ।
मन को प्रथम पन समुझि अछत तनु
लखि नइ गति भइ मति मलानि ॥१॥
पिय को बचन परिहर्‌यो जिय के भरोसे,
संग चली बन बड़ो लाभ जानि ।
पीतम-बिरह तौ सनेह-सरबसु, सुत !
औसर को चूकिबो सरिस न हानि ॥२॥
आरज-सुवन के तो दया दुवनहूँ पर,
मोहिं सोच मोतें सब बिधि नसानि ।
आपनी भलाई भलो कियो नाथ सबही को,
मेरे ही दिन सब बिसरी बानि ॥३॥
नेम तौ पपीहा ही के, प्रेम प्यारे मीन ही के,
'तुलसी' कही है नीके हृदय आनि ।
इतनी सही सो कही सीय, ज्यों ही त्यों ही,
रही, प्रीति परी सही बिधि सों न बसानि ॥४॥

शब्दार्थ—गलानि=खेद । अछत=जीते रहना । आरज-सुवन=आर्यपुत्र पति) । दुवन=(दुर्जन) शत्रु । नसानि=नष्ट हो गई, बात बिगड़ गई । बानि=स्वभाव । न बसानि=वश नहीं चलता ।

भावार्थ—(सीताजी हनुमान से कह रही हैं) हे तात, तुमसे भी ये बातें कहने में मुझे बड़ी आत्म-ग्लानि हो रही है। मेरे मन का जो पहला प्रण था (कि मैं राम का वियोग न सह सकूँगी, प्राण दे दूँगी) उसको स्मरण करके और यह जानकर कि अभी तक मेरा शरीर है, इस प्रकार की नई बात देखकर मेरी बुद्धि मलिन हो जाती है (मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं करती) ॥ १ ॥ वन आते समय पति के वचनों को नहीं माना था (उन्होंने वन में आने से रोका था पर), मैंने वन आने का हठ किया था, वह इसलिये कि जिसमें मेरे प्राण बचे रहें। इसीसे बड़ा लाभ समझकर मैं वन में उनके साथ चली थी। स्नेह के सर्वस्व प्रियतम (राम का) विरह तो अवसर का चूक जाना हुआ (क्योंकि उनसे वियोग होते ही प्रण के अनुसार मुझे शरीर त्याग देना चाहिए था) पर मैंने ऐसा नहीं किया, अब इससे बढ़कर और हानि क्या होगी ? समय का चूकना सबसे बड़ी हानि है ॥२॥ आर्यपुत्र (राम) के हृदय में तो शत्रुओं के प्रति भी दया रहती है। शरण में आने पर उनके दोषों का विचार नहीं करते। पर मुझे यही सोच है कि मैंने सब कुछ बिगाड़ दिया (इसीसे मुझपर उनकी कृपा नहीं होती)। नाथ ने तो अपनी ही भलाई से (अपनी साधुता से) सबका भला किया है, पर न जाने क्यों मेरे ही दिन (मेरी ही पारी में—मेरे ही लिये) उन्हें अपनी सब बान भुला दी (उन्हें इस समय अपने स्वभाव का भी स्मरण नहीं है) ॥३॥ चातक का ही नेम अच्छा है कि वह बादल के द्वारा निरादर पाने पर भी उसका ध्यान नहीं छोड़ता, मुझसे वैसे नेम का भी निर्वाह नहीं हो रहा है। प्रिय मछली का प्रेम तो प्रेम ही है (जल से वियुक्त होते ही प्राण दे देती है)। पर मैं अभी तक जीवित हूँ, पति से वियुक्त होने पर मर नहीं गई। वे इतनी बातें तो भलीभाँति हृदय में विचारकर कह सकीं, फिर इसके आगे उनसे कुछ भी कहते न बन पड़ा। इतना कहकर वे जहाँ की तहाँ रह गईं, (उन्हें मूर्छा आ गई)। उनकी प्रीति मानो सही पड़ गई (वियोग सहकर मर जाना—उनकी दशा उस समय ऐसी हो गई थी, मानो वे मृतक हो गई हों) तुलसी कहते हैं कि ब्रह्मा से किसी का क्या वश चल सकता है ? ॥४॥

अलं०—अर्थांतरन्यास (२, ४), उत्प्रेक्षा (प्रीति परी सही)।

(३०) सीता-आश्वासन

राग केदारा

मातु काहे को कहति अति बचन दीन ?
तब की तुहीं जानति, अब की हौं ही कहत,
सबके जिय की जानत प्रभु प्रवीन ॥१॥
ऐसे तो सोचहिं न्याय-निठुर-नायक-रत
सलभ, खग, कुरंग, कमल, मीन।
करुनानिधान को तो ज्यों तनु छीन भयो
त्यों-त्यों मनु भयो तेरे प्रेम पीन ॥२॥
सिय को सनेह, रघुबर की दसा सुमिरि
पवनपूत देखि भयो प्रीति-लीन।
'तुलसी' जन को जननी प्रबोध कियो,
'समुझि तात ! जग विधि-अधीन' ॥३॥

शब्दार्थ—न्याय-निठुर-नायक-रत=न्याय करने में निष्ठुरता दिखानेवाले नायक (प्रेमी) से प्रेम करनेवाले। सलभ=फतींगा। खग=पक्षी (चातक)। कुरंग=मृग। मीन=मछली। छीन=दुर्बल। दीन=पुष्ट। जन=दास। प्रबोध कियो= समझाया। समुझि=समझो।

भावार्थ—(हनुमानजी सीताजी को उत्तर दे रहे हैं) हे माता, आप इस प्रकार के दीनवचन क्यों कहती हैं ? (ऐसा कहने की आवश्यकता नहीं, आपने जैसा समझ रखा है वैसी बात नहीं है)। पहले की बातें तो आप ही जानती होंगी, पर इस समय की बात मैं ही आपसे बताए देता हूँ। चतुर प्रभु (श्री राम) सबके हृदय की बात जानते हैं (आपके हृदय की बात भी जानते होंगे) ॥१॥ जैसी बातें आप सोच रही हैं वैसी बातें तो उन्हें सोचनी चाहिए जिनके प्रेमी न्याय करने में निष्ठुरता दिखलावें, जैसे फतींगा (दीपक से), खग (पपीहा या चातक मेघ से), मृग (राग से), कमल (सूर्य से) और मछली (जल

से प्यार करते) हैं (इनके प्रेमी निष्ठुर हैं)। करुणानिधान राम ऐसे नहीं हैं आपके विरह में ज्यों-ज्यों उनका शरीर क्षीण होता जाता है त्यों-त्यों उनके मन में आपका प्रेम पुष्ट होता जा रहा है (अर्थात् उनका प्रेम आपके प्रति बढ़ रहा है, वे आपको एकदम नहीं भूले हैं) ॥२॥ सीताजी के प्रेम और रामजी की दशा का स्मरण करके हनुमान प्रेम-भाव में मग्न हो गए। तुलसीदासजी कहते हैं कि जब जानकीजी ने जन (दास—हनुमान) को व्याकुल देखा तो उन्हें समझाया और कहा कि हे पुत्र संसार को दैव के अधीन समझो। इसलिये दुखी होने की कोई आवश्यकता नहीं ॥३॥

अलं०—विरोधाभास (२), अनुपलब्धिप्रमाण (जग विधि अधीन)।

---

(३१) सीता-प्रबोध

राग मारू

तौ लौं, मातु ! आपु नीके रहिबो।
जौ लौं हौं ल्यावौं रघुबीरहिं, दिन दस और दुसह दुख सहिबो ॥१॥
सोखिकै खेत कै, बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो।
प्रबल दनुज-दल दलि पल आध में, जीवत दुरित-दसानन गहिबो ॥२॥
बैरि-बृंद-बिधवा-बनितनि को, देखिबो बारि-बिलोचन बहिबो।
सानुज सेन-समेत स्वामिपद निरखि परम मुद मंगल लहिबो ॥३॥
लंक-दाह उर आनि मानिबो साँचु राम सेवक को कहिबो।
'तुलसी' प्रभु सुर सुजस गाइहैं, मिटि जैहै सबको सोचु दव दहिबो ॥४॥

शब्दार्थ—नीके=भली भाँति (धैर्यपूर्वक)। दिन दस=थोड़े दिनों तक। सोखिकै=पानी सोखकर। खेत कै=खेत की भाँति बनाकर (सूखा मार्ग-सा करके)। सेतु=पुल। उदधि=समुद्र। बोहित=जहाज। दनुज=राक्षस। दुरित=पाप। बनिता=स्त्री। लहिबो=लहना है। आनि=लाकर। उर आनि=हृदय में समझ कर। दव दहिबो=आग में जलना, क्लेश पाना।

भावार्थ—(हनुमानजी सीता से कहते हैं) हे माता, आप उस समय तक धैर्य धारण करके यहीं रहें, जब तक मैं रघुवीर रामचंद्रजी को यहाँ बुलाकर नहीं लिए आता। अब आपके लिये केवल दस दिनों तक (बहुत थोड़े समय तक) दुःख सहना रह गया है ॥१॥ इस समुद्र को या तो सोखकर खेत की तरह समभूमि बना लेंगे या इसपर पुल बाँध लेंगे। इसके पार करने के लिये जहाज की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आधे पल में (बहुत शीघ्र) प्रबल राक्षस-सेना का संहार करके, इस पापरूपी रावण को जीते ही पकड़ लिया जायगा ॥२॥ हमें शत्रुओं की विधवा स्त्रियों के नेत्रों से अश्रु बहते देखना है (शत्रुओं का संहार हो जाने से उनकी स्त्रियाँ विधवा होकर रोवेंगी)। इसके अनंतर छोटे भाई लक्ष्मणसहित सेना से युक्त अपने स्वामी (श्रीराम) के चरणों को देखकर अत्यंत हर्ष और मंगल प्राप्त करना है (रामजी को विजयी नरेश के रूप में देखना चाहता हूँ) ॥३॥ हे माता, लंका का जलना देखकर और इसपर भली भाँति विचारकर आप मुझ राम-सेवक की बातों को सत्य मानिएगा (मैं जो कुछ कह रहा हूँ सब सत्य होगा, इसका प्रमाण लंका-दहन है, जब राम की सेना के एक छोटे से वानर ने लंका जला दी तो रावण का संहार होना क्या कठिन है)। (तुलसीदासजी कहते हैं कि) देवता लोग प्रभु (राम) का सुयश गान करेंगे और सबका शोक और हृदय का जलना दूर हो जायगा (सबका क्लेश दूर होगा) ॥४॥

अलं०—अप्रस्तुत-प्रशंसा (कार्यनिबंधना, ३ में)।

---

(३२) विभीषण का उपदेश

राग आसावरी

दूसरो न देखतु साहिब सम रामै।

वेदऊ पुरान कबि कोबिद बिरति-रत,

जाको जस सुनत, गावत गुन-ग्रामै ॥१॥

माया, जीव, जग-जाल, सुभाउ, करमकाल,
सबको सासकु, सबमैं, सब जामैं।
विधि से करनिहार, हरि से पालनिहार,
हर से हरनिहार जपैं जाके नामैं ॥२॥
सोइ नरबेष जानि, जन की विनती मानि,
मतो नाथ सोई जातें भलो परिनामैं।
सुभट-सिरोमनि कुठारपानि सारिखेहू
लखी औ लखाई इहाँ किए सुभ सामैं ॥३॥
बचन-बिभूषन बिभीषन-बचन सुनि
लागे दुख-दूषन-से दाहिनेउ बामैं।
'तुलसी' हुमुकि हिये हन्यो लात, भले तात
चल्यो सुरतरु ताकि तजि घोर घामैं ॥४॥

शब्दार्थ—बिरति-रत=वैराग्य में लीन, विरागी। गुन-ग्रामै=गुण के समूह को। सासकु=शासन करनेवाला। करनिहार=सृष्टि करनेवाले। हरनिहार=संहार करनेवाले। मतो=सलाह करो। कुठारपानि=परशुराम। सारिखेहू=समान भी। सुभ सामैं=सुंदर साम (नीति)। बचन-बिभूषन=श्रेष्ठ वचन। बामैं=बाएँ। दाहिनेउ बामैं=अनुकूल वचन भी बुरे जान पड़े। हुमुकि=तान-कर। सुरतरु=कल्पवृक्ष (राम की शरण में)।

भावार्थ—(विभीषण रावण से कह रहा है) हे स्वामी! राम के ऐसा दूसरा कोई व्यक्ति हमें नहीं दिखाई देता। वेद, पुराण, कवि, पंडित और विरागी सभी उनका यश सुनते हैं और उन्हीं के गुण-समूहों को गाते हैं ॥१॥ माया, जीव, सांसारिक प्रपंच, स्वभाव, कर्म, काल इन सभी का शासन करनेवाले वे ही हैं। वे सबमें रहते हैं और उनमें सब रहते हैं। ब्रह्मा के ऐसे सृष्टि करनेवाले, विष्णु के ऐसे संसार का पालन करनेवाले और महादेव के ऐसे संसार का संहार करनेवाले भी जिसके नाम को जपा करते हैं (वे सबसे ऊपर हैं)

॥२॥ हे रावण ! ऐसे परात्पर परब्रह्म राम नर-वेश में अवतरित हुए हैं, उन्हें पहचानकर और मुझ दास की विनय मानकर ऐसी बात करो जिससे अंत में भला हो। वीरों के शिरोमणि परशुराम के ऐसे (क्रोधी व्यक्ति) ने भी उनकी वीरता देख-दिखाकर उनसे साम करना ही शुभ समझा (उनसे समझौता कर लेना ही उचित जाना) ॥३॥ विभीषण के ये वचन जो वचनों को विभूषित करने वाले थे (अत्यंत उत्तम थे) वे सुनने के पश्चात् रावण को वैसे ही लगे जैसे दुःख और दूषण लगते हैं। (रावण को ये बातें नहीं रुचीं)। उसे अनुकूल बातें भी प्रतिकूल जान पड़ीं। (तुलसीदास कहते हैं कि रावण ने तानकर उसके हृदय में लात मारी। विभीषण यह कहता हुआ वहाँ से चला गया कि हे भाई, तुमने अच्छा ही किया। विभीषण वहाँ से इस प्रकार चला जैसे भीषण घाम (धूप) को छोड़कर वह कल्प-वृक्ष की छाया में जा रहा हो (रावण के यहाँ रहना घोर घाम में रहना था, राम की शरण कल्पवृक्ष की सुखदायिनी छाया थी) ॥४॥

अलं०—काव्यार्थापत्ति (२, ३), उपमा, लोकोक्ति (४ पूर्वार्ध), ललित (४ उत्तरार्ध)।

---

(३३) सीता-त्रिजटा-संवाद

राग केदारा

अब लौं मैं तो सों न कहे री।
सुन त्रिजटा ! प्रिय प्राननाथ बिनु बासर-निसि दुख दुसह सहे री ॥१॥
बिरह बिषम बिष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहे री।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री ॥२॥
सर-सरीर सूखे प्रान-बारिचर जीवन-आस तजि चलनु चहे री।
तैं प्रभु-सुजस-सुधा सीतल करि राखे तदपि न तृप्ति लहे री ॥३॥
रिपु-रिस घोर नदी बिबेक-बल धीर-सहित हुते जात बहे री।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समीरसुत पैरि गहे री ॥४॥

'तुलसिदास' सब सोच-पोच-मृग मन-कानन भरि पूरि रहे री।
अब सखि सिय! संदेह परिहरु हिय आइ गए दोउ बीर अहेरी ॥५॥

शब्दार्थ—वासर=दिन। सुभाय=स्वभावतः। दहे=जला दिए। लागि=लिए, वास्ते। रहँट=कुएँ से पानी निकालने की एक प्रकार की कल। नहे=(नधे) लगे हुए। सर=तालाब। बारिचर=जलजीव। जीवन=जल और जिंदगी। लहे=पाया। रिपु-रिस=शत्रु का क्रोध। हुते=थे। टेक=सहारा। पोच=दुष्ट। कानन=वन। अहेरी=शिकारी।

भावार्थ—(सीताजी त्रिजटा से अपने विरह का दुःख कह रही हैं) हे सखी त्रिजटा, अब तक मैंने तुझसे अपने उन दुसह दुःखों की बात नहीं बतलाई है, जो मुझे अपने प्यारे प्राणपति के वियोग में रातोदिन (बराबर) सहने पड़े हैं ॥१॥ विरहरूपी भयंकर विष की लता हृदय में बढ़ गई है (बड़ी हो गई है—मेरा विरह-दुःख अब बहुत बढ़ गया है)। इस लता ने स्वभावतः सभी सुखों को जला दिया है (मेरे समस्त सुख विरह के कारण नष्ट हो गए)। उस लता को सींचने के लिये मेरे नेत्र (रूपी बैल) नित्य-प्रति कामदेव के रहँट में लगे रहते हैं (मेरे नेत्र निरंतर आँसू बहाया करते हैं, और इनके आँसू बहाने से विरह-दुख बढ़ जाता है) ॥२॥ शरीररूपी तालाब के सूख जाने से प्राणरूपी जल-जीव जीवन की आशा छोड़कर अब उसे त्यागकर अन्यत्र जा रहे हैं (जैसे सर के सूख जाने से जल-जंतु अन्यत्र चले जाते हैं वैसे ही विरह के कारण शरीर इतना दुर्बल हो गया है कि अब प्राण उसमें नहीं रह सकते, मेरे प्राण निकलना ही चाहते हैं)। हे सखि, उन जल-जंतुओं को तूने राम के सुयश रूपी अमृत (जल) से सींचकर शीतलता प्रदान करके रखना चाहा, पर उन्हें उतने से ही तृप्ति न मिल सकी (जिस प्रकार थोड़े जल के मिलने से जल-जंतु नहीं रुकते, उसी प्रकार केवल प्रभु के सुयश-गान से मुझे तृप्ति नहीं मिली क्योंकि मैं उनके दर्शन की अभिलाषिणी हूँ) ॥ ३ ॥ मैं शत्रु की क्रोधरूपी भीषण नदी में विवेक के बल पर धैर्य के साथ बहती जा रही थी (शत्रु के क्रोध को विवेकपूर्वक धैर्य से सह रही थी) इसी समय उस नदी में तैरकर

पवित्र हनुमान ने मुझे मुद्रिका का सहारा देकर पकड़ लिया (मैंने समझ लिया था कि शत्रु के क्रोध में हमें अपना शरीर दे देना होगा, क्योंकि उसका कहीं अंत नहीं था, पर हनुमान ने मुँदरी देकर यह आशा उत्पन्न कर दी है कि प्रभु शत्रु का अंत करके मेरी रक्षा करेंगे) ॥४॥ (तुलसीदास कहते हैं कि) सोच रूपी दुष्ट पशु मेरे मनरूपी वन में भर गए हैं (मेरे मन में नाना प्रकार के सोच हुआ करते हैं । (तब त्रिजटा ने उत्तर दिया) कि सखि सीता, अब मन से संदेह दूर करो, वे दोनों वीर शिकारी आया ही चाहते हैं (वे दोनों भाई आकर तेरे दुःख को दूर करेंगे) ॥५॥

अलं०—रूपक (समस्त पद में), परिकर (अहेरी), विशेषोक्ति (२) ।

लंका कांड

(३४) प्रत्यागमन

राग सोरठ

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता ॥१॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं ।
जब सिय-सहित विलोकि नयन भरि राम-लपन उर लैहौं ॥२॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी ।
गनक बोलाइ पाँय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥३॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो ।
प्रभु आगमन सुनत 'तुलसी' मनो मीन मरत जल पायो ॥४॥

शब्दार्थ—फुरि=सत्य । अवधि=समय की सीमा । गनक=ज्योतिषी ।

भावार्थ—(अयोध्या में) माताएँ बैठी हुई सगुन विचार रही हैं कि मेरे बच्चे कब कुशल-पूर्वक घर लौटेंगे । (घर पर बैठे हुए) कौए से वे पूछती हैं कि हे कौए, सत्य बात बतला दो ॥१॥ (यदि मेरे बच्चे) राम-लक्ष्मण सीता-

सहित कुशल-पूर्वक लौट आवेंगे और उन्हें नेत्र-भर देखकर हृदय से लगाऊँगी तो तुझे खाने के लिये दूध-भात की दोनी दूँगी और तेरी चोंच सोने से मढ़ा दूँगी (कहा जाता है कि यदि अकस्मात् कागा घर पर आकर बैठे और 'काँव-काँव' करके उड़ जाय तो कोई बाहर से अवश्य आता है, यही सगुन माताएँ देख रही हैं) ॥२॥ अवधि को समीप आना जानकर माताएँ हृदय में बड़ी उतावली और व्याकुल हो रही हैं। वे ज्योतिषियों को बुलाकर और उनके पैरों पड़कर प्रेम-मग्न हो मधुर वचनों से अपने बच्चों के आने का समाचार पूछती हैं ॥ ३ ॥ इसी समय कोई भरत के पास से यह समाचार लेकर आ पहुँचा कि सब लोग सकुशल लौट आए। तुलसीदास कहते हैं कि यह समाचार पाकर वे लोग उसी प्रकार आनंदित हुईं जिस प्रकार मछली जल पाने से आनंदित होती है ॥४॥

अलं०—प्रहर्षण (२ पूर्वार्ध में), उत्प्रेक्षा (४)।

---

(३५) तिलकोत्सव

राग टोड़ी

आजु अवध आनंद-बधावन रिपु रन जीति राम आए।
सजि सुविमान निसान बजावत मुदित देव देखन धाए ॥१॥
घर-घर चारु चौक चंदन मनि, मंगल-कलस सबनि साजे।
ध्वज पताक तोरन बितान वर, बिबिध भाँति बाजन बाजे ॥२॥
राम-तिलक सुनि दीप-दीप के नृप आए उपहार लिए।
सीय-सहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरष हिये ॥३॥
मंगल गान, बेदधुनि, जयधुनि मुनि-असीस-धुनि भुवन भरे।
बरषि सुमन सुर सिद्ध प्रसंसत, सबके सब संताप हरे ॥४॥
राम-राज भइ कामधेनु महि सुख-संपदा लोक छाए।
जनम-जनम जानकीनाथ के गुनगन 'तुलसिदास' गाए ॥५॥

शब्दार्थ—निसान=बाजे। तोरन=उत्सव के लिये बने हुए फाटक। बितान=

चँदोवा। दीप=(द्वीप)। उपहार=नजर, भेंट। आसीन=बैठे हुए। जोहारत=प्रणाम करते हैं।

भावार्थ—रामचंद्र रण में शत्रु को जीतकर सकुशल घर लौटकर आ गए हैं, इसलिये अयोध्या में आनंद-बधाई हो रही है। उस आनंद-बधाई को देखने के लिये अपने-अपने सुंदर विमान सजाकर और बाजे (दुंदुभी) बजाते हुए हर्षित होकर देव-गण दौड़ पड़े ॥१॥ प्रत्येक घर में चंदन और मणि से सुंदर चौकें पूरी गई हैं। सबने मंगल-कलस (घड़े) भरकर दरवाजों पर रखे हैं। उत्तमोत्तम ध्वजा, पताका, तोरण, चँदोवा सजाए गए हैं और अनेक प्रकार के बाजे बजते हैं ॥२॥ यह समाचार सुनकर कि रामचंद्र का राज्याभिषेक होनेवाला है द्वीप-द्वीप से राजा भेंट लेकर आए हैं। वे लोग सीतासहित सिंहासन पर रामचंद्र को बैठा देखकर हर्षित हृदय से उन्हें प्रणाम करते हैं ॥३॥ मंगल गान की ध्वनि, वेद-ध्वनि, जयध्वनि, मुनियों के द्वारा दिए जानेवाले आशीर्वाद की ध्वनि समस्त लोकों में भर गई है। सुर और सिद्ध पुष्प बरसाकर राम की प्रशंसा कर रहे हैं कि इन्होंने सब लोगों के सब प्रकार के क्लेश दूर कर दिए ॥४॥ राम के राज में पृथ्वी कामधेनु हो गई है (जैसी इच्छा करें वैसा ही फल पृथ्वी से मिलता है)। इसलिये संसार भर में सुख और ऐश्वर्य छा गए हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जानकी के पति राम के गुणों का गान हम जन्म-जन्मांतर में करते रहें ॥५॥

अलं०—रूपक (महि भइ कामधेनु)।

उत्तर कांड

(३६) राम-पद-प्रयाग-वर्णन

राग भैरव

रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथ-राज बिराजै।
शंकर-हृदय-भगति-भूतल पर प्रेम-अछयबट भ्राजै ॥१॥
स्यामबरन पद-पीठ, अरुन तल, लसति बिसद नखस्रेनी।
जनु रबिसुता सारदा सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी ॥२॥

अंकुस कुलिस कमल धुज सुंदर भँवर-तरंग-विलासा।
मज्जहिं सुर सज्जन मुनिजन मन-मुदित मनोहर वासा ॥३॥
विनु विराग जप जाग जोग व्रत, विनु तप, विनु तनु त्यागे।
सब सुख सुलभ सद्य 'तुलसी' प्रभु-पद-प्रयाग अनुरागे ॥४॥

शब्दार्थ—अभिराम=सुंदर। कामप्रद=मनोवांछित फल देनेवाला। तीरथ-राज=प्रयाग। भ्राजै=शोभित है। पद-पीठ=चरणों का ऊपरी भाग। तल=नीचे का भाग, तलवा। विसद=उज्ज्वल। नख-स्रेनी=नखों की पंक्ति। रवि-सुता=यमुना। सारदा=सरस्वती। सुरसरि=गंगा। वासा=निवास, झोपड़ी बनाकर रहना। जाग=यज्ञ। सद्य=तत्काल।

भावार्थ—रामचंद्रजी के सुंदर चरण मनोवांछित फल देनेवाले तीर्थराज (प्रयाग) की भाँति सुशोभित हैं। भगवान् शंकर के हृदय की भक्तिरूपी भूमि (थाला) में प्रेमरूपी अक्षयवट शोभा पा रहा है (शंकरजी परम भागवत हैं, उनके हृदय में राम की जो भक्ति है उसीसे राम-प्रेम की उत्पत्ति है) ॥१॥ पैरों के ऊपर का जो श्याम रंग है, तलवों की जो ललाई है और नखों की जो उज्ज्वल पंक्ति सुशोभित है उसके देखने से ऐसा जान पड़ता है, मानो यमुना (पद-पीठ), सरस्वती (तलवा) और गंगा (नख-स्रेनी) मिलकर सुंदर त्रिवेणी रूप से वह रही हैं ॥२॥ रामजी के चरणों में जो अंकुश, वज्र, कमल, ध्वजा आदि के चिह्न हैं वे ही इन सरिताओं में होनेवाले भँवरों और तरंगों के विलास हैं (वे सब भँवर और लहरें हैं)। (जिस प्रकार त्रिवेणी में लोग स्नान करते हैं, और साधु कुटी बनाकर तट पर रहते हैं, उसी प्रकार इस त्रिवेणी में भी) देवता, सज्जन और मुनि लोग प्रसन्न मन से स्नान करते हैं और सुंदर झोपड़ी बनाकर रहते हैं (राम के चरणों का ये लोग सतत ध्यान करते हैं) ॥३॥ (उस त्रिवेणी में वैराग्य आदि करने से फल मिलता है, पर) राम के पदरूपी प्रयाग में प्रेम करने से विना वैराग्य, जप, यज्ञ, योग, व्रत, तप किए और विना शरीर त्यागे (कुछ लोग त्रिवेणी में आरे से सिर कटवाकर सीधे स्वर्ग जाया करते थे) ही सब प्रकार के सुख सरलतापूर्वक मिल सकते हैं ॥४॥

अलं०—सांग रूपक (समस्त पद में), व्यतिरेक (४)

(३७) दोलोत्सव

राग सूहो

कोसलपुरी सुहावनी सरि सरजू के तीर।
भूपावली-मुकुटमनि नृपति जहाँ रघुबीर ॥
पुर-नर-नारि चतुर अति धरमनिपुन, रत-नीति।
सहज सुभाय सकल उर श्रीरघुबर-पद-प्रीति ॥
श्रीरामपद-जलजात सबके प्रीति अबिरल पावनी।
जो चहत सुक-सनकादि संभु बिरंचि मुनिमन-भावनी ॥
सब ही के सुंदर मंदिराजिर, राउ रंक न लखि परै।
नाकेस-दुर्लभ भोग लोग करहिं न मन बिषयनि हरै ॥१॥

सब ऋतु सुखप्रद सो पुरी पावस अति कमनीय।
निरखत मनहिं हरत हठि हरित अवनि रमनीय ॥
बीरबहूटि बिराजहीं, दादुर-धुनि चहुँ ओर।
मधुर गरजि घन बरषहिं, सुनि-सुनि बोलत मोर ॥
बोलत जो चातक मोर कोकिल कीर पारावत घने।
खग बिपुल पाले बालकनि कूजत उड़ात सुहावने ॥
बकराजि राजति गगन, हरिधनु तड़ित दिसि-दिसि सोहहीं।
नभ नगर की सोभा अतुल अवलोकि मुनि मन मोहहीं ॥२॥

गृह-गृह रचे हिंडोलना महि गच काँच सुढार।
चित्र बिचित्र चहूँ दिसि परदा फटिक पगार ॥
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम-खंभ सुजोर।
चारु पाटि पटी पुरट की झरकत मरकत भौंर ॥

मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि-जटित दुति जगमगि रही।
पटुली मनहुँ विधि निपुनता निज प्रगट करि राखी सही॥
बहुरंग लसत वितान मुकुतादाम-सहित मनोहरा।
नवसुमन-माल-सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा॥३॥
झुंड-झुंड झूलन चलीं गजगामिनि वर नारि।
कुसुँभि चीर तनु सोहहिं भूषन विविध सँवारि॥
पिकवयनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड।
राम-सुजस सब गावहीं सुसुर सुसारँग गुंड॥
सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं।
बहु भाँति तान-तरंग सुनि गंधर्व किन्नर लाजहीं॥
अति मचत छूटत कुटिल कच छवि अधिक सुंदरि पावहीं।
पट उड़त भूषन खसत हँसि-हँसि अपर सखी झुलावहीं॥४॥
फिरि-फिरि झूलहिं भामिनी अपनी-अपनी बार।
विबुध-विमान थकित भए देखत चरित अपार॥
बरषि सुमन हरषहिं उर बरनहिं हरिगुन-गाथ।
पुनि-पुनि प्रभुहि प्रसंसहीं 'जय जय जानकिनाथ'॥
जय जानकीपति विसद कीरति सकल-लोक-मलापहा।
सुरबधू देहिं असीस चिरजिव राम सुख-संपति महा॥
पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं।
रघुबीर के गुनगन नवल नित 'दास तुलसी' गावहीं॥५॥

शब्दार्थ—सरि=नदी। रत-नीति=नीति में लगे हुए। जल-जात=कमल। अविरल=घनी। पावनी=पवित्र। भावनी=भानेवाली। मंदिराजिर=मकान और आँगन। राउ=राजा। रंक=गरीब। नाकेस=इंद्र (नाक+ईश)। पावस=वर्षा। बीरबहूटि=एक बरसाती लाल कीड़ा। दादुर=मेढक। कीर=सुगा।

पारावत=कबूतर। बकराजि=बगुलों की पंक्ति। हरिधनु=इंद्रधनुप। तड़ित=बिजली। हिंडोलना=झूला। महि=फर्श। गच=छत। काँच=शीशा। सुढार=सुडौल। पगार=प्राकार, चहारदीवारी। बिद्रुम=मूँगा। सुजोर=मजबूत। पाटि=पटिया। पुरट=सोना। झरकत=(झलकत) चमकता है। भौंर=वह कड़ी जिसमें झूले की डोरी बाँधी जाती है। डाँडी=झूले के लट्ठे। पटुली=वह तख्ता जिसपर बैठकर झूला झूलते हैं। मुकुतादाम=मोतियों की माला। मधुकर=भ्रमर। कुसुँभि चीर=केसरिया रंग का वस्त्र। सरद=शरद्‌ऋतु का। तुंड=मुख। सुसुर=सुंदर स्वर से। सारँग=एक प्रकार का राग। गुंड=मलार राग का एक भेद। सुहव=सुंदर बाजे। सुघरनि=सुंदरता के साथ। अति मचत=गान में अत्यंत लीन होनेपर (झुलाते समय)। कच=बाल। पट=वस्त्र। भूपन=गहने। खसत=गिर पड़ते हैं। मलापहा=पाप दूर करनेवाले। अघौघ=पाप के समूह।

भावार्थ—सुंदर अयोध्या सरयू नदी के किनारे सुशोभित है। भूपों की अवली के मुकुटमणि राम वहाँ के राजा हैं। नगर के स्त्री-पुरुष अत्यंत चतुर और धर्म में निपुण हैं। वे नीति में रत रहते हैं। स्वभावतः सबके हृदय में राम के चरणों में प्रीति है (सब राम को चाहते और मानते हैं)। श्रीराम के पद-कमलों में सबकी घनी और पवित्र प्रीति है। वह प्रीति ऐसी है, जिसकी इच्छा शुकदेव, सनकादि, महादेव और ब्रह्मा करते हैं और जो मुनियों के मन को अच्छी लगनेवाली है। सबके पास सुंदर मकान और आँगन हैं। राजा और गरीब में वहाँ कोई भेद नहीं दिखाई देता। वहाँ के लोग इंद्र से भी दुर्लभ (बढ़कर) भोग-विलास करते हैं, पर उनका मन विषयों के वशीभूत नहीं होता ॥१॥

वह नगरी यों तो सभी-ऋतुओं में सुखदायिनी है, पर विशेष रूप से वह वर्षा में अत्यंत मनोहर हो जाती है। वहाँ की रमणीय पृथ्वी देखते ही हृदय को बरबस हरण कर लेती है। बीरबहूटियाँ इधर-उधर चलती दिखाई पड़ती हैं, चारो ओर मेढकों की ध्वनि होती है। बादल मधुर-ध्वनि से गर्जन करके बरसते हैं। उस ध्वनि को सुनकर मोर बोलने लगते हैं। चातक, मोर, कोकिल, सुग्गे और कबूतर ये सब पक्षी बोलते हैं। बालकों ने बहुत-से पक्षी पाल रखे हैं।

वे बोलते हैं और उड़ते हुए बड़े सुहावने लगते हैं। आकाश में बगुलों की पंक्ति उड़ती हुई शोभा पाती है। चारो ओर इंद्रधनुष और बिजली की चमक शोभा देती है। उधर आकाश और इधर नगर की अतुल्य शोभा को देखकर मुनियों के मन भी मोहित हो जाते हैं॥ २॥

घर-घर में झूले पड़े हुए हैं। पृथ्वी और छत सुंदर काँच (स्फटिक) की बनी है। चारों ओर विचित्र-विचित्र प्रकार के परदे पड़े हैं और स्फटिक की दीवार बनी है। सीधे और लंबे मजबूत बने हुए मूँगे के खंभे शोभा पा रहे हैं। सुंदर सोने की पटिया ऊपर पटी है जिसमें नीलम की बनी हुई कड़ी झलक रही है (लटक रही है)। सोने के बने हुए और मणियों द्वारा जटित लट्टों की चमक जगमगा रही है। पटुली की रचना में मानो ब्रह्मा ने सचमुच अपनी सारी चतुराई प्रकट करके रख दी है। अनेक रंग के शामियाने सुशोभित हैं जिनमें सुंदर मोतियों की मालाएँ लटक रही हैं, मानो नवीन खिले सुमनों की मालाओं की सुगंध से लुब्ध होकर सुंदर भौंरे गुंजार कर रहे हों॥ ३॥

गज की-सी गतिवाली सुंदर स्त्रियाँ झुंड की झुंड झूला झूलने के लिये चलीं। उनके शरीर पर कुसुंभी वस्त्र शोभित हैं। वे अनेक प्रकार के आभूषणों से अपने को सँवारे हुए हैं। वे स्त्रियाँ कोकिलवचनी (कोकिल की भाँति मधुर बोलने वाली) मृगलोचनी (मृग के से सुंदर नेत्रोंवाली) और शरदऋतु के चंद्रमा के समान सुंदर मुखवाली हैं। वे सब रामजी का सुयश सुंदर स्वर में सारंग और गुंड, मलार, सोरठ आदि रागों में गा रही हैं। सुंदर बाजे बज रहे हैं। उन लोगों की यह तान-तरंग (यह आनंदोत्सव) सुनकर गंधर्व और किन्नर भी लज्जित होते हैं। जब वे लोग गाने में अंत्यत मग्न हो जाती हैं तो टेढ़े बाल छूट जाते हैं, उस समय वे स्त्रियाँ अत्यंत सुशोभित होती हैं। वस्त्र उड़ते हैं, गहने गिर पड़ते हैं। सखियाँ एक दूसरी को हँस-हँसकर झुला रही हैं॥४॥

स्त्रियाँ अपनी-अपनी पारी आने पर बारंबार झूलती हैं। इस चरित को देख-कर आकाश में देवताओं के विमान स्थकित हो गए हैं। देवता-गण पुष्प बरसाते हैं और हृदय में हर्षित होकर राम के गुणों का वर्णन करने लगते हैं। वे बारंबार प्रभु रामचंद्र की प्रशंसा करते हैं और 'जय जय जानकीनाथ' कहते हैं। श्रीराम-

चंद्रजी की सुंदर कीर्ति जो समस्त संसार के पाप को दूर करनेवाली है उसका गान करते हैं। देवताओं की स्त्रियाँ आशीर्वाद देती हैं कि हे राम आप अत्यंत सुख और संपत्ति के साथ चिरजीवी हों। मैंने वर्षा-समय की अयोध्या की शोभा का जो थोड़ा-सा वर्णन किया है उसे सुनकर पापों का समूह नष्ट हो जाता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं रामचंद्र के नये-नये गुण-गण को नित्य-प्रति गाता हूँ ॥५॥

अलं०—उदात्त (समस्त पद में), असंबंधातिशयोक्ति (कई स्थानों पर), उत्प्रेक्षा (३), लुप्तोपमा (पिकबयनी आदि में)

---

(३८) फाग-वर्णन

राग गौरी

अवध नगर अति सुंदर बर सरिता के तीर।
नीति-निपुन नर-तिय सबहिं धरम धुरंधर धीर ॥१॥
सकल ऋतुन्ह सुखदायक ता महँ अधिक बसंत।
भूप-मौलि-मनि जहँ बस नृपति जानकीकंत ॥२॥
बन उपबन नव किसलय कुसुमित नाना रंग।
बोलत मधुर मुखर खग पिकबर, गुंजत भृंग ॥३॥
समय बिचारि कृपानिधि देखि द्वार अति भीर।
खेलहु मुदित नारि-नर बिहँसि कहेउ रघुबीर ॥४॥
नगर नारि-नर हरषित सब चले खेलन फागु।
देखिं राम-छबि अतुलित उमगत उर अनुरागु ॥५॥
स्याम-तमाल-जलदतनु निर्मल पीत दुकूल।
अरुन-कंज-दल-लोचन सदा दास अनुकूल ॥६॥
सिर किरीट, स्रुति कुंडल, तिलक मनोहर भाल।
कुंचित केस, कुटिल भ्रू, चितवनि भगत-कृपाल ॥७॥

कल कपोल, सुक नासिक, ललित अधर द्विज-जोति ।
अरुन कंज महँ जनु जुग पाँति रुचिर गज-मोति ॥८॥
वर दर-ग्रीव, अमितबल वाहु सुपीन विसाल ।
कंकन हार मनोहर, उरसि लसति वनमाल ॥९॥
उर भृगु-चरन विराजत, द्विज-प्रिय चरित पुनीत ।
भगत-हेतु नर-विग्रह सुरवर गुन-गोतीत ॥१०॥
उदर त्रिरेख मनोहर सुंदर नाभि गँभीर ।
हाटक-घटित जटित-मनि कटितट रट मंजीर ॥११॥
उरु अरु जानु पीन मृदु मरकत खंभ समान ।
नूपुर मुनि-मन मोहत करत सुकोमल गान ॥१२॥
अरुन वरन पदपंकज, नखदुति इंदु-प्रकास ।
जनक-सुता-करपल्लव-लालित विपुल विलास ॥१३॥
कंज कुलिस धुज अंकुस रेख चरन सुभ चारि ।
जन-मन-मीन हरन कहँ बंसी रची सँवारि ॥१४॥
अंग-अंग प्रति अतुलित सुषमा वरनि न जाइ ।
एहि सुख मगन होइ मन फिर नहिं अनत लोभाइ ॥१५॥
खेलत फागु अवधपति अनुज सखा सव संग ।
वरषि सुमन सुर निरखहिं, सोभा अमित अनंग ॥१६॥
ताल मृदंग झाँझ डफ बाजहिं पनव निसान ।
सुघर सरस सहनाइन्ह गावहिं समय समान ॥१७॥
वीना वेनु मधुर धुनि सुनि किन्नर गंधर्व ।
निज गुन गरुअ हरुअ अति मानहिं मन तजि गर्व ॥१८॥
निज-निज अटनि मनोहर गान करहिं पिकवैनि ।
मनहुँ हिमालय सिखरनि लसहिं अमर-मृगनैनि ॥१९॥

धवल धाम तें निकसहिं जहँ तहँ नारि-बरूथ।
मानहुँ मथत पयोनिधि विपुल अपसरा-जूथ ॥२०॥
किंसुक-बरन सुअंसुक सुषमा सुखनि समेत।
जनु बिधु-निवह रहे करि दामिनि-निकर निकेत ॥२१॥
कुंकुम सुरस अबीरनि भरहिं चतुर बर नारि।
ऋतु सुभाय सुठि सोभित देहिं बिबिध बिधि गारि ॥२२॥
जो सुख जोग जाग जप तप तीरथ तें दूरि।
राम-कृपा तें सोइ सुख अवध-गलिन्ह रह्यो पूरि ॥२३॥
खेलि बसंत कियो प्रभु मज्जन सरजू-नीर।
बिबिध भाँति जाचक-जन पाए भूषन-चीर ॥२४॥
'तुलसिदास' तेहि अवसर माँगी भगति अनूप।
मृदु मुसुकाइ दीन्हि तब कृपादृष्टि रघुभूप ॥२५॥

शब्दार्थ—मौलि=सिर। दुकूल=वस्त्र। स्रुति=कान। कुंचित=घुँघुराले। सुक नासिक=सुग्गे की सी नासिका। द्विज=दाँत। दर=शंख। ग्रीव=गर्दन। पीन=पुष्ट। उरसि=हृदय में, वक्षस्थल पर। विग्रह=शरीर। गोतीत=इंद्रियों से परे। हाटक=सोना। घटित=निर्मित। रट=बोलती है। मंजीर=करधनी। उरु=जंघा। इंदु=चंद्रमा। बंसी=वह कटिया जिसमें आटा आदि लगाकर मछली फँसाई जाती है। सुषमा=शोभा। अनत=अन्यत्र। पनव=एक प्रकार का बाजा। समय-समान=समयानुकूल। हरुअ=हलका, साधारण। अटनि=छतों पर। अमर=देव। बरूथ=समूह। अंसुक=वस्त्र। निवह=समूह। निकेत=घर। कुंकुम=लाह का बना हुआ पतला बर्तन जिसमें अबीर भरकर मारते हैं। सुरस=घोला हुआ। सुठि=अत्यंत।

भावार्थ—अत्यंत सुंदर नगर अयोध्या श्रेष्ठ नदी (सरयू) के किनारे स्थित है। वहाँ के बसनेवाले स्त्री-पुरुष सभी नीति-निपुण और धर्म-धुरंधर हैं ॥१॥ वहाँ सभी ऋतुएँ सुख देनेवाली हैं, उनमें भी सबसे अधिक वसंत ऋतु

है। वहाँ के राजा, जानकीनाथ राम हैं, जो राजाओं में सर्व-श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥ वन-वाटिका सभी में नई-नई कोपलें निकली हैं और अनेक रंग के पुष्प खिले हैं। मधुर ध्वनि से पक्षी और श्रेष्ठ कोयल बोलती है, भौंरे गुंजार करते हैं ॥३॥ समुचित समय समझकर और दरवाजे पर लोगों की भीड़ एकत्र देखकर रामचंद्रजी ने हँसते हुए कहा कि आप सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्नता-पूर्वक फाग खेलें ॥४॥ नगर के सभी स्त्री-पुरुष हर्षित होकर फाग खेलने के लिये चले। राम की अद्वितीय छवि देखकर उनके हृदय में प्रेम उमड़ता है (उनका हृदय प्रेमपूर्ण हो जाता है) ॥ ५ ॥ उनके तमाल वृक्ष एवं बादल के समान श्यामवर्ण शरीर पर पीला वस्त्र सुशोभित है। उनके नेत्र लाल कमल के दलों-से सुंदर हैं और सदा दासों के अनुकूल रहते हैं ॥ ६ ॥ सिर पर किरीट है, कानों में कुंडल है, ललाट पर मनोहर तिलक है। केश घुँघुराले हैं, भौंहें टेढ़ी हैं। उनकी चितवन भक्तों पर कृपा करनेवाली है ॥ ७ ॥ सुंदर कपोल हैं, सुग्गे की सी नासिका है, बढ़िया ओठ हैं, दाँतों की सुंदर चमक है (लाल-लाल ओठों में दाँतों की शोभा ऐसी है) मानो लाल कमल में गजमुक्ता की दो पंक्तियाँ रखी हों ॥ ८ ॥ सुंदर शंख की सी गर्दन है। भुजाएँ अत्यंत बलशालिनी, पुष्ट और लंबी हैं। हाथ का कंकण और गले का हार मनोहर है। वक्षस्थल पर वनमाला शोभा पा रही है ॥ ९ ॥ छाती पर भृगुचरण-चिह्न सुशोभित है। उन्हें ब्राह्मण प्रिय हैं (वे ब्रह्मण्य हैं)। उनके चरित्र पवित्र हैं। भक्तों के लिये वे श्रेष्ठ देव नर-देह धारण करते हैं। वे गुण की सीमा और इंद्रियों की पहुँच के परे हैं ॥१०॥ उनके उदर में सुंदर त्रिरेखाएँ (त्रिबलि) हैं, नाभि गंभीर है। सोने की बनी और मणियों से जटित करधनी कमर पर बजा करती है ॥११॥ जंघ और जानु पुष्ट हैं। वे सुकुमार हैं, नीलम के स्तंभ के समान जान पड़ते हैं। जिस समय पैरों में पायजेब बजते हैं। उस समय मुनियों के मन भी मुग्ध हो जाते हैं ॥१२॥ उनके चरण-कमल (तलुए) लाल रंग के हैं और नखों की चमक चंद्रमा के प्रकाश की सी है। उन चरणों की सेवा जनक की पुत्री सीता अपने कर-पल्लवों से किया करती हैं। उनका विलास बहुत अधिक है ॥१३॥ चरण में कमल, वज्र, ध्वजा और अंकुश के चार शुभ चिह्न हैं, मानो मनुष्य के मनरूपी मछली को हरण करने के लिये

वंशी सँवार कर रखी हो (वे मनुष्यों का मन अपनी ओर खींच लेते हैं) ॥१४॥ उनके प्रत्येक अंग में अद्वितीय शोभा है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। यदि मन इस शोभा के सुख में मग्न हो जाय तो फिर वह अन्यत्र कहीं भी मुग्ध नहीं हो सकता (अन्य स्थानों की शोभा या चमक-दमक उसे आकृष्ट नहीं कर सकती) ॥१५॥ अयोध्या के राजा राम अपने छोटे भाइयों और सखाओं के साथ फाग खेल रहे हैं। देवता लोग आकाश से इस शोभा को देखते और फूल बरसाते हैं। उस समय की राम की शोभा अगणित कामदेवों की सी थी ॥१६॥ ताल (मजीरा), मृदंग, झाँझ, डफ (खँजड़ी), पणव (ढोल) निसान (नगाड़े) बजते हैं। सुंदर और सरस रागवाली सहनाइयों के द्वारा समयानुकूल गान गाए जा रहे हैं ॥१७॥ वीणा और वेणु (बाँसुरी) की मधुर-ध्वनि हो रही है। उसे सुनकर किन्नर और गंधर्व अपने बड़े-बड़े गुणों को भी गर्व छोड़कर हृदय से तुच्छ समझते हैं ॥ १८ ॥ कोकिलवचनी स्त्रियाँ अपनी-अपनी छतों पर सुंदर गाने गा रही हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो हिमालय पर्वत की चोटियों पर देवताओं की मृगनयनी स्त्रियाँ सुशोभित हों ॥ १९ ॥ उज्ज्वल प्रासादों से जहाँ-तहाँ स्त्रियों का झुंड निकलता है, मानो अनेक अप्सराओं का यूथ क्षीरसागर को मथ रहा हो ॥ २० ॥ किंशुक (पलाश का पुष्प लाल रंग) वर्ण के वस्त्र पहने हुए वे लोग शोभा और सुख से युक्त हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो चंद्रमाओं के समूह बिजलियों के समूह में अपना घर बना रहे हैं (चंद्रमा मुख है, बिजली उनके वस्त्र हैं) ॥ २१ ॥ सुंदर चतुर स्त्रियाँ कुंकुमों में घोला हुआ अबीर भरकर (लोगों पर फेंकती हैं)। ऋतु (वसंत—फाग) के अनुकूल अत्यंत सुंदर और अनेक प्रकार की गालियाँ देती हैं ॥ २२ ॥ जो सुख योग, यज्ञ, जप, तप और तीर्थ से भी दूर है (इनके अनुष्ठानों से भी प्राप्त नहीं हो सकता) वही सुख राम की कृपा से अयोध्या की गलियों में भर गया है ॥२३॥ वसंत खेलकर (होली खेलने के बाद) रामचंद्रजी ने सरयू में स्नान किया। याचक लोगों ने इस उपलक्ष में अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण पाए ॥२४॥ तुलसीदास ने भी याचक बनाकर उस समय अनूप राम-भक्ति माँगी। तब मधुर

मुसकान के साथ कृपादृष्टि से रघुवीर राम ने वह भक्ति उसे दी (तुलसी के हृदय में भक्ति उत्पन्न हुई) ॥ २५ ॥

अलं०—उत्प्रेक्षा (८,१४,१९,२०,२१)

---

(३९) सीता-निर्वासन

राग सोरठ

चरचा चरनि सों चरची जानमनि रघुराइ।
दूत-मुख सुनि लोक-धुनि घर घरनि बूझी आइ ॥१॥
'प्रिया निज अभिलाष रुचि कहि' कहति सिय सकुचाइ।
तीय तनय-समेत तापस पूजिहौं वन जाइ ॥२॥
जानि करुनासिंधु भावी-विवस सकल सहाइ।
धीर धरि रघुवीर भोरहि लिए लषन बोलाइ ॥३॥
'तात तुरतहि साजि स्यंदन सीय लेहु चढ़ाइ।
बालमीकि मुनीस-आस्रम आइयहु पहुँचाइ' ॥४॥
'भले हि नाथ' सुहाथ माथे राखि राम-रजाइ।
चले 'तुलसी' पालि सेवक-धरम-अवधि अघाइ ॥५॥

शब्दार्थ—चरचा=समाचार। चर=गुप्तचर, जासूस। चरची=बात-चीत की। जानमनि=ज्ञानियों में श्रेष्ठ। लोक-धुनि=जनता का मंतव्य। घरनि=स्त्री (सीता)। तापस=तपस्वी, मुनि। भावी=होनहार। भोर=प्रातःकाल। स्यंदन=रथ। रजाइ=आज्ञा।

भावार्थ—ज्ञानियों में शिरोमणि रघुवंशी रामचंद्रजीने दूतों के द्वारा सब समाचार जाने। उन्होंने दूत के मुख से लोक-ध्वनि (जनता के विचार सुनकर) फिर आकर घर में सीताजी से बातें कीं। उनसे पूछा कि तुम्हारे मन में कोई अभिलाषा हो तो कहो। तब सीताजी ने सकुचकर उत्तर दिया कि मेरे मन में यही इच्छा है कि स्त्री-बच्चोंसहित वन में जाकर तपस्वियों की पूजा करूँ ॥ २ ॥

करुणामय राम ने सीता के ये वचन होनहार के द्वारा कहलाए हुए समझे। क्योंकि उनके लिये सब बातें सहायक हो गईं (अपवाद के कारण सीता को निर्वासित करना चाहते थे और इधर सीता ने स्वयं ही वन जाने का प्रस्ताव कर दिया)। धैर्य धारण करके रामजी ने प्रातःकाल लक्ष्मण को बुला भेजा ॥ ३ ॥ उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि हे तात! रथ सजाकर उसपर सीता को चढ़ा लो और वाल्मीकि मुनि के आश्रम में पहुँचा आओ ॥ ४ ॥ लक्ष्मण ने कहा—'अच्छा महाराज'। राम की ऐसी आज्ञा सुनकर लक्ष्मण ने अपने मस्तक पर हाथ रखा (माथा ठोंका)। तुलसीदास कहते हैं कि सेवक के धर्म की सीमा का पालन भली भाँति करके (स्वामी राम की ऐसी विकट आज्ञा को बिना किसी प्रकार के उज्र के करने के लिये तैयार होकर) सीता को वन में पहुँचाने चले ॥ ५ ॥

अलं०—समाधि (२)।

---

(४०) वाल्मीकि-खेदप्रकाश

राग सोरठ

आए लषन लै सौंपी सिय मुनीसहि आनि।
नाइ सिर रहे पाइ आसिष जोरि पंकजपानि ॥१॥
वालमीकि बिलोकि ब्याकुल लषन गरत गलानि।
सर्बबिद बूझत न बिधि की बामता पहिचानि ॥२॥
जानि जिय अनुमान ही सिय सहस बिधि सनमानि।
राम सद्गुन-धाम, परमिति भई कछुक मलानि ॥३॥
दीनबंधु दयालु देवर देखि अति अकुलानि।
कहति बचन उदास 'तुलसीदास' त्रिभुवन-रानि ॥४॥

शब्दार्थ—आनि=लाकर। गरत=गलते हुए। सर्बबिद=सब कुछ जाननेवाले। बामता=प्रतिकूलता। परमिति=मर्यादा।

भावार्थ—लक्ष्मणजी ने ले आकर वाल्मीकि ऋषि को सीता सौंप दी। उनको सिर नवाकर और आशीर्वाद पाकर वे हाथ जोड़कर खड़े हो गए (उनसे कुछ कहते नहीं बना) ॥ १ ॥ सर्वज्ञ वाल्मीकिजी ने लक्ष्मण को व्याकुल और ग्लानि से गलते हुए (लज्जित) देखकर दैव की प्रतिकूलता को समझकर उनसे कुछ पूछा नहीं ॥ २ ॥ वाल्मीकि ने हृदय में अनुमान से ही सब बातें जान लीं। उन्होंने हजारों प्रकार से सीता का सत्कार किया (बड़े आदर और सम्मान से उन्हें रखा)। (वे अपने मन में सोचने लगे कि) रामचंद्रजी सद्‌गुणों के धाम हैं, पर इस कार्य से उनकी मर्यादा (बहुत न सही) कुछ मलिन अवश्य हो गई ॥ ३ ॥ सीताजी दीनबंधु और दयालु देवर लक्ष्मण को (वियोग के समय दुःखी होते) देखकर अत्यंत व्याकुल हुईं। तुलसी-दासजी कहते हैं कि त्रिभुवन की रानी (सीता) लक्ष्मण से उदास वचन कहती हैं ॥ ४ ॥

अलं०—विरोधाभास (४)

---

(४१) सीता-संदेश

राग सोरठ

तौ लौं बलि आपु ही कीबी बिनय समुझि सुधारि।
जौ लौं हौं सिखि लेउँ बन ऋषि-रीति बसि दिन चारि ॥१॥
तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि ॥२॥
लषनलाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि।
पालबी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि ॥३॥
सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचन-बारि।
बालमीकि न सके 'तुलसी' सो सनेह सँभारि ॥४॥

शब्दार्थ—तापसी=तपस्विनी । मनुहारि=अनुकूल बातें । मोचत=बहाते हुए ।

भावार्थ—(सीताजी लक्ष्मण से कहती हैं कि) जब तक मैं यहाँ पर हूँ तब तक हे वत्स ! तुम्हीं प्रभु से समझाकर विनय करना (तुम्हारी यह विनय बहुत सुधरी हुई होनी चाहिए)। यह तभी तक जब तक मैं वन में दो-चार दिन बसकर(थोड़े समय तक रहकर) ऋषियों की रीति न सीख लूँ ॥१॥ मैं तपस्विनी होकर राजाओं के अनुकूल संदेश क्या भेज सकती हूँ (उनकी मनुहार कैसे कर सकती हूँ) फिर उस प्रकार से कोई हितकारी साधु आकर उनसे (राम से) कहेगा (हमारे अनुकूल समाचार सुनावेगा) ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण कृपालु, तुम हमें एकदम मत भूल जाना । राज-धर्म का विचार करके जिस प्रकार अन्य तपस्विनियों का पालन करते हो वैसे ही मेरा भी पालन करना (मेरा भी ध्यान रखना) ॥३॥ सीता के ये वचन सुनकर सभी लोग नेत्रों से आँसू बहाने लगे । तुलसीदास कहते हैं कि वाल्मीकिजी तो अपने स्नेह को सँभाल ही न सके (वे अत्यंत प्रेम-मग्न हो गए) ॥ ४ ॥

अलं०—उपमा (३)

---

(४२) लक्ष्मण-विदा

राग सोरठ

सुनि व्याकुल भए उतरु कछु कह्यो न जाइ ।
जानि जिय विधि वाम दीन्हों मोहिं सरुप सजाइ ॥१॥
कहत हिय मेरि कठिनई लखि गई प्रीति लजाइ ।
आजु अवसर ऐसेहूँ जौं न चले प्रान बजाइ ॥२॥
इतहिं सीय-सनेह-संकट उतहिं रमा-रजाइ ।
मौनहीं गहि चरन गौने सिख सुआसिप पाइ ॥३॥

प्रेम-निधि पितु को कहे मैं परुष-वचन अघाइ।
पाप तेहि परिताप 'तुलसी' उचित सहे सिराइ ॥४॥

शब्दार्थ—सजाइ = दंड। बजाइ=डंके की चोट। रजाइ=आज्ञा। मौनहीं-चुपचाप। गौने=गमन किया, लौटे। सिराइ=ठंडे होकर, धैर्यपूर्वक।

भावार्थ—लक्ष्मणजी सीताजी के वचन सुनकर अत्यंत व्याकुल हो गए, उनसे कुछ भी कहते नहीं बना। उन्होंने अपने मन में यह समझ लिया कि प्रतिकूल विधाता ने क्रुद्ध होकर मुझे यह दंड दिया है ॥१॥ वे (मन में) कहते हैं कि मेरे हृदय की कठिनता देखकर प्रीति भी लज्जित होकर चली गई (मेरा कठोर हृदय प्रीति करने योग्य नहीं रहा)। क्योंकि ऐसे अवसर पर भी मेरे प्राण डंके की चोट निकल नहीं जाते हैं ॥ २ ॥ इधर तो सीताजी के स्नेह का संकट है और उधर रामजी की आज्ञा। इसलिये लक्ष्मण बिना कुछ कहे ही सीताजी से आशीर्वाद पाने के बाद चुपचाप लौट पड़े ॥३॥ वे सोचते हैं कि मैंने प्रेम के समुद्र पिता दशरथ को भरपेट कड़े वचन कहे थे। आज उसी पाप के कारण परिताप सहना पड़ा (यह दुःख देखना पड़ा) इसे धैर्यपूर्वक सहना ही उचित है।

अलं०—सम (४)

---

(४३) वाल्मीकि-शिक्षा

राग सोरठ

पुत्रि! न सोचिए, आई हौं जनक-गृह जिय जानि।
कालिही कल्यान कौतुक, कुसल तव, कल्यानि ॥१॥
राजऋषि पितु ससुर, प्रभु पति, तू सुमंगल-खानि।
ऐसेहूँ थल बामता, बड़ि बाम बिधि की बानि ॥२॥
बोलि मुनि कन्या सिखाईं प्रीति-गति पहिचानि।
आलसिन्ह की देवसरि सिय सेइयहु मन मानि ॥३॥

न्हाइ प्रातहि पूजिबो वट विटप अभिमत-दानि।
सुवन-लाहु उछाहु, दिन-दिन, देवि अनहित-हानि ॥४॥
पाप-ताप-बिमोचनी कहि कथा सरस पुरानि।
बालमीकि प्रबोधि 'तुलसी' गई गरुइ गलानि ॥५॥

शब्दार्थ—जनक=राजा जनक (सीता के पिता)। कालिही=कल ही। कल्यान कौतुक=कल्याण का खेल (पुत्रजन्म)। अनहित=अमंगल।

भावार्थ—(बाल्मीकिजी सीताजी को उपदेश दे रहे हैं) हे पुत्रि, तुम किसी प्रकार का सोच मत करो। यह समझ लो कि मैं राजा जनक के घर में ही आकर रहती हूँ। कल ही हे कल्याणी! कल्याण का खेल और तेरा कुशल होनेवाला है (पुत्रजन्म होगा)। तुम्हारे पिता और श्वसुर राजर्षि हैं तुम्हारे पति सबके प्रभु हैं। तू स्वयं सभी सुमंगलों की खानि है। ऐसे स्थान (व्यक्ति) में भी ब्रह्मा ने प्रतिकूलता की। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मा की आदत टेढ़े रहने की पड़ गई है ॥ २ ॥ ऋषि ने कन्या कहकर और उनकी प्रीति की गति को पहचानकर उन्हें शिक्षा दी। हे सीता, यहाँ आलसियों (जो सुकर्म नहीं करते) की देवी (गंगा) विराजमान हैं, मन में मानकर उनकी सेवा करो। प्रातःकाल स्नान करके मनोवांछित फल देनेवाले वट वृक्ष की पूजा करना। इससे पुत्र का लाभ और दिन-दिन उत्साह होगा। हे देवि, साथ ही अमंगलों की हानि भी होगी ॥४॥ उन्होंने पाप के ताप को नष्ट करनेवाली (गंगा की) सरस पुरानी कथा सुनाई। स्वयं बाल्मीकि ने जब सीता को समझाया तो उनके हृदय की भारी ग्लानि दूर हो गई ॥ ५ ॥

अलं०—विषम (२)।

---

(४४) लवकुश-वर्णन

राग सोरठ

बालक सीय के बिहरत मुदित-मन दोउ भाइ।
नाम लव कुस राम-सिय अनुहरति सुंदरताइ ॥१॥

देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना ते लै धरत दुराइ।
खेल खेलत नृप-सिसुन्ह के बालबृंद बोलाइ ॥२॥
भूप भूषन बसन वाहन राज-साज सजाइ।
बरम चरम कृपान सर धनु तून लेत बनाइ ॥३॥
दुखी सिय पिय-विरह 'तुलसी' सुखी सुत-सुख पाइ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ ॥४॥

शब्दार्थ—दुराइ=छिपाकर। बरम=कवच। चरम=ढाल।

भावार्थ—सीताजी के दोनों बालक प्रसन्न मन से इधर-उधर विहार करते हैं। उनका नाम लव-कुश है और वे दोनों राम और सीता की शोभा का अनुगमन करते हैं। मुनि और मुनि के बालक जो खेलौना देते हैं उन सबको ले जाकर छिपाकर रख देते हैं। वे बालकों को बुलाकर उनके साथ राजाओं के खेल खेलते हैं। वे राजा के से गहने, वस्त्र, सवारी और अन्य प्रकार के राज-साज सजकर वर्म, चर्म, तलवार, धनुष, तरकस आदि शरीर पर धारण कर लेते हैं। हैं ॥ ३ ॥ पति के वियोग में दुखी सीता पुत्रों का सुख पाकर सुखी हैं। उनकी वह दशा वैसी ही है जैसे आग से दूध उफनाता है और (उफनाते समय) पानी छोड़ने से दब जाता है (पति-वियोग से सीता का दुख उमड़ चला था, वह पुत्रों के पाने से दब गया) ॥ ४ ॥

अलं०—उदाहरण।